RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2017-19

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 55 | अंक : 04 | कुल पृष्ठ : 36 | 4 अप्रेल, 2018

शुल्क एक प्रति : 15/- | वार्षिक : 150/- रुपये | पंचवर्षीय 700/- रुपये | दस वर्षीय 1300/- रुपये

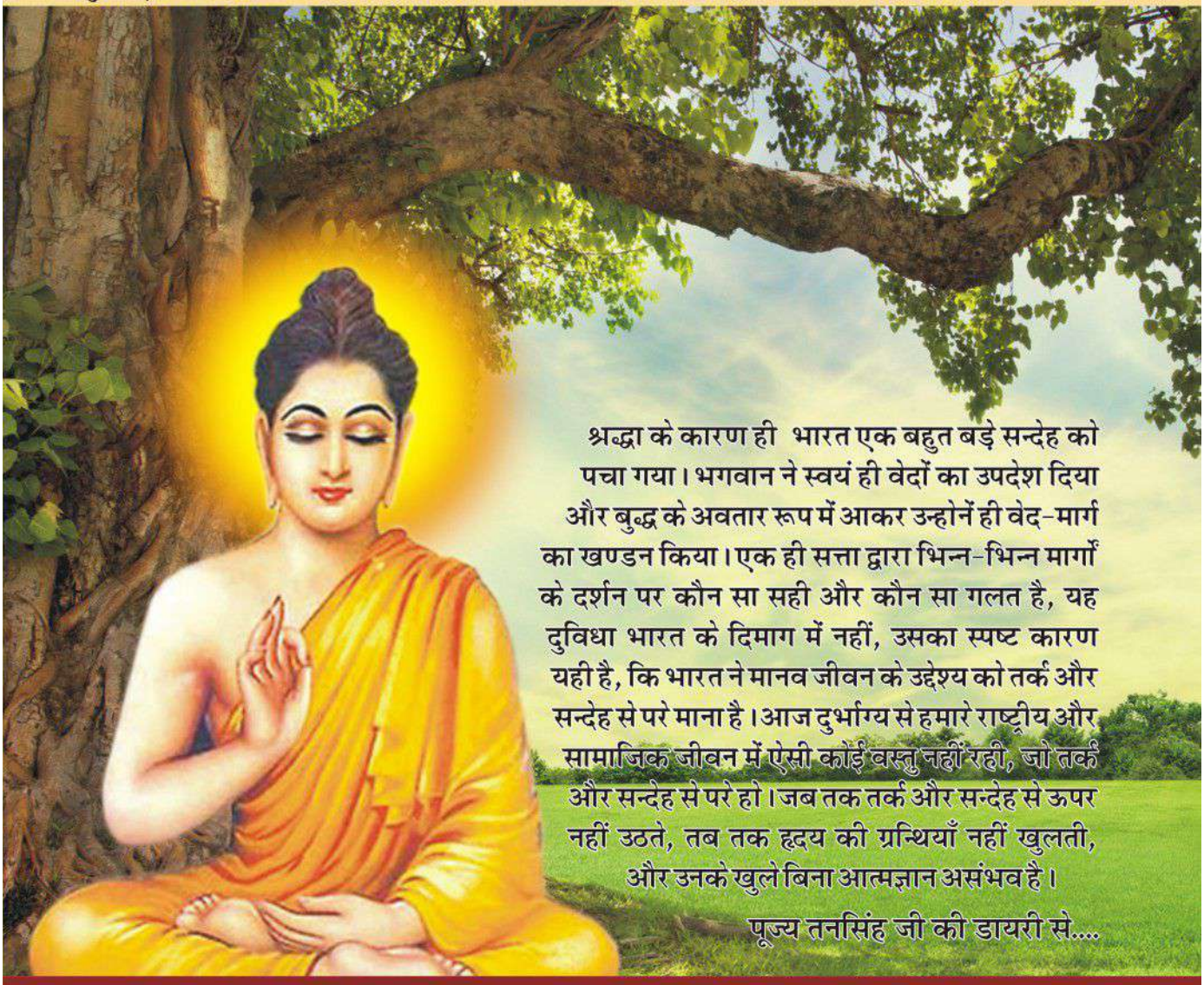

श्रद्धा के कारण ही भारत एक बहुत बड़े सन्देह को पचा गया। भगवान ने स्वयं ही वेदों का उपदेश दिया और बुद्ध के अवतार रूप में आकर उन्होनें ही वेद-मार्ग का खण्डन किया। एक ही सत्ता द्वारा भिन्न-भिन्न मार्गों के दर्शन पर कौन सा सही और कौन सा गलत है, यह दुविधा भारत के दिमाग में नहीं, उसका स्पष्ट कारण यही है, कि भारत ने मानव जीवन के उद्देश्य को तर्क और सन्देह से परे माना है। आज दुर्भाग्य से हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन में ऐसी कोई वस्तु नहीं रही, जो तर्क और सन्देह से परे हो। जब तक तर्क और सन्देह से ऊपर नहीं उठते, तब तक हृदय की ग्रन्थियाँ नहीं खुलती, और उनके खुले बिना आत्मज्ञान असंभव है।

पूज्य तनसिंह जी की डायरी से....

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान

फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़

आजाद सिंह राठौड़

सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड

हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 अप्रेल, 2018

वर्ष : 55 अंक-04

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह वेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ पूर्णता और शून्यता	✍ श्री कृपाकांक्षी	05
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	06
❍ निराकार ध्यान	✍ स्वामी श्री यतीश्वरानन्द	08
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	11
❍ कमजोरी	✍ श्री गिरधारीसिंह डोभाड़ा	13
❍ शबरी के राम	✍ श्री जयरामसिंह गौर	17
❍ हल्दीघाटी रण में तँवर सरदार	✍ श्री स्वरूपसिंह जिंझनीयाली	18
❍ विचार-सरिता (त्रिंशत् लहरी)	✍ श्री विचारक	19
❍ हाड़ा वंश बून्दी	✍ श्री विरेन्द्रसिंह तलावदा	22
❍ उद्देश्य के अनुकूल प्रार्थना सफल हो.....	✍ श्री जैसू खानपुर	28
❍ भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में राजपूतों...	✍ श्री भंवरसिंह मांडासी	29
❍ भक्त शिरोमणि मीरा बाई	✍ श्री ब्रजराजसिंह राजावत खरेड़ा	30
❍ अपनी बात	✍	32

समाचार संक्षेप

उच्च प्रशिक्षण शिविर :

आगामी उच्च प्रशिक्षण शिविर दिनांक 11 मई से 21 मई तक बाड़मेर में गेहूँ रोड़ पर स्थित भारतीय ग्राम्य आलोकायन ट्रस्ट के आश्रम में होने जा रहा है। शिविर के लिये निर्धारित पात्रता को पूरा न करने वालों की तरफ से यह अनुरोध आता रहता है कि हमें भी उच्च प्रशिक्षण शिविर में सम्मिलित होने की स्वीकृति दी जाए। सत्र के मध्य होने वाले शिविरों में अधिकतर शिविर अवधि की पूरी छुट्टियाँ नहीं होती लेकिन उ.प्र.शि. तो गर्मी की छुट्टियों में होता है इसलिये जो पूर्व में पात्रता के पूरे शिविर नहीं कर सके, उनका भी इस शिविर के लिये आग्रह रहता है। ऐसे अनुरोध अधिकतर संभाग प्रमुखों के माध्यम से आते हैं और अनुरोध करने वालों की सक्रियता आदि की जानकारी भी संभाग प्रमुखों के पास रहती है अत: उनकी एक बैठक 11 मार्च को संघशक्ति कार्यालय में रखी गई। पात्रता में किसको थोड़ी छूट दी जाए, शिविर के प्रशिक्षण में किस भाव को विशिष्टता दी जाए, गणवेश क्या हो आदि शिविर सम्बन्धी विषयों पर चर्चा के बाद निर्धारण किया गया।

चिंतन बैठक :– पिछले कुछ कार्यक्रमों में और अलग से भी यह बात उभर कर आ रही थी कि युवा पीढ़ी को अनावश्यक आक्रोश प्रदर्शित करने के मार्ग की बजाय सही मार्ग दिखाया जावे। श्री क्षत्रिय युवक संघ तो यह कार्य कर ही रहा है पर माँग उभर रही थी कि सद्मार्ग से हटकर बढने वालों को रोक कर सही मार्ग की ओर खींचना चाहिए। वर्तमान जो भी व्यवस्था लोकतंत्र की है, उसे नकारा नहीं जा सकता। इसको स्वीकार कर हमारा मार्ग हमें बनाना है। सतोन्मुखी राह पर चलकर संघर्ष किए जाने से ही हमारी कौम की साख बचेगी अन्यथा हमें भी गुंडा और हुड़दंगी नाम दिया जा रहा है जो इस कौम के उज्ज्वल इतिहास पर दाग लगाना है।

सात्विक सामाजिक भाव के साथ कर्मरत युवाओं को बुलाकर चर्चा करना तय हुआ। 4 मार्च को प्रदेश के विभिन्न भागों से आमंत्रित युवा बन्धु संघशक्ति प्रांगण में एकत्रित हुए और चर्चा की। राजकीय सेवाओं के अतिरिक्त निजी क्षेत्र की सेवाओं की ओर ध्यान दिया जाए। उसके लिये दिल्ली में कार्यरत बन्धुओं ने सहयोग करने की इच्छा जाहिर की। प्रदेश में स्किल डेवलपमेंट योजना में ऐसे कार्यों को प्रशिक्षण हेतु जुड़वाया जाए जो हमें रास आते हैं। समाज के लोग जो व्यापार आदि में संलग्न हैं उनसे सीखकर अपना स्वयं का कार्य किया जाए। ऐसे विचार रोजगार सम्बन्धी आए। शिक्षा को बढावा देने में मददगार बनें। शक्तिशाली बनकर गलत राह पर समाज को धकेलने वालों को रोका जाए। सही राह के लिये युवाओं को प्रोत्साहित किया जाए। यह विचार भी आया कि इस तरह की बैठकें जिला स्तर पर भी की जाए।

होली स्नेह मिलन :– होली का अवसर उत्साह पूर्ण खुशियों का होता है। उत्साह अपनी सीमा लांघ जाए तो प्रदर्शन फिर बेढंगा हो जाता है। प्रतिवर्ष होली के दिन जयपुर शहर में ही बड़ी संख्या में लोग पीड़ित बनकर अस्पताल में पहुँचते हैं। परस्पर संघर्ष की स्थिति भी कई बार बन जाती है। सात्विक और सादगीपूर्ण होली मिलन संघशक्ति प्रांगण में संघप्रमुखश्री के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ। जयपुर की शेखा शाखा में पूर्व में स्नेह मिलन कार्यक्रम आयोजित हुआ। संघ के विभिन्न क्षेत्रों में भी सादगीपूर्ण होली मिलन कार्यक्रम आयोजित हुए।

सामाजिक भाव उजागर :– सामराऊ में उदंडियों ने हमारे समाज बन्धुओं के घर जला दिए और जो हाथ लगा वह घरों से ले भागे। क्षेत्रिय राजनैतिक अग्रणियों और सामाजिक अग्रणियों ने इस घटना के विरुद्ध एकता बनाई और राज्य सरकार पर दबाव डाला जिससे जलने से हुए नुकसान की भरपाई राज्य सरकार द्वारा की गई। श्री सोहनसिंह की सुपुत्री नीतू कँवर का विवाह 17 फरवरी को होना निश्चित था मगर निकृष्टता के परिचायक उन लुटेरों ने उसके गहने, दहेज आदि सब लूट लिया था। श्री क्षत्रिय युवक संघ ने निश्चय किया कि समाज की

इस बेटी का विवाह समाज ही करे। गाँव के लोगों की सहायता हेतु लोगों से निवेदन किया गया था, उसमें एकत्रित राशि को इस विवाह हेतु लगाने का निश्चय किया। समाज के अनेक लोगों का सामाजिक भाव उभरा और इस शुभ कार्य में साथ देने को आगे आए। कोई अर्थ रूप में भले कुछ न दे सके पर यदि वहाँ शादी में सेवा करने भी पहुँच जाता है तो वह भी स्तुत्य है। हमारा यह सामाजिक भाव ही हमारी शक्ति है। जोधपुर में 17 फरवरी को विवाह सम्पन्न हुआ और अनेक प्रमुख लोग आशीर्वाद देने पधारे। विवाह के पूरे खर्चे का ब्योरा पथ-प्रेरक के 4 मार्च के अंक में प्रकाशित किया जा चुका है। इस पुनीत कार्य में सम्मिलित कुछ लोगों ने यह प्रसारित किया जैसे उन्होंने अकेले ने ही इस कार्य को अंजाम दिया है। पूरा श्रेय वे लेना चाहें तो लें, हमें तो यही देखना है कि इस कार्य में वे साथ तो थे।

पूर्णता और शून्यता

– कृपाकांक्षी

पूर्ण होना सब कुछ होना माना जाता है। जो पूर्ण है वह सब कुछ है। कुछ शेष नहीं रहा है उसके लिये, इसलिए वह पूर्ण है। वहीं शून्य होना कुछ नहीं होना है। इस प्रकार ये दोनों शब्द एक दूसरे के विलोमार्थी हैं। एक में सब कुछ है तो दूसरे में कुछ नहीं है। पूर्ण पूर्ण होता है, उससे थोड़ा भी कम होगा तो अपूर्ण ही माना जाएगा। आधा पूर्ण कोई शब्द नहीं होता। अर्थात् या तो पूर्ण होगा या फिर अपूर्ण ही होगा। इससे तो स्पष्ट होता है कि पूर्णता का विलोम शून्य नहीं बल्कि अपूर्णता है। वास्तव में गहराई से सोचें तो शून्यता और पूर्णता, ये दोनों शब्द तो एक दूसरे से समानार्थक रूप से जुड़े हुए हैं।

जिस प्रकार आधा पूर्ण कोई शब्द नहीं होता, उसी प्रकार आधा शून्य भी कोई शब्द नहीं होता। गणित की भाषा में अर्द्धगोला शब्द मिलता है। लेकिन अर्द्धशून्य कोई शब्द नहीं मिलता। शून्य का क्या आधा और क्या चौथाई, वह तो होता है तो पूर्ण ही होता है। यहीं आकर पूर्णता और शून्यता आपस में जुड़ जाते हैं। जिस प्रकार अर्द्ध पूर्ण नहीं होता, उसी प्रकार अर्द्धशून्य भी नहीं होता। पूर्ण भी पूर्ण होता है तो शून्य भी पूर्ण ही होता है।

यह तो हो गई भाषा विज्ञान की बात लेकिन वास्तव में भी क्या व्यवहार में पूर्णता और शून्यता समान चरित्र रखते हैं? यहाँ यदि फिर गहराई से देखें तो पूर्ण वही होता है जो स्वयं को शून्य मानने लगता है और दूसरे शब्दों में जो स्वयं को शून्य मान लेता है, वह स्वत: ही पूर्ण हो जाता है। पूर्ण होने की साधना वास्तव में शून्य होने की ही साधना है। जब तक कुछ होने का भाव रहता है, तब तक पूर्णता संभव नहीं है और कुछ होने के भाव का अभाव ही तो शून्य होना है।

इस प्रकार महापुरुषों के जीवन को देखें, उनके सान्निध्य में प्राप्त निर्देशों को समझें तो बुद्धि यही समझ पाती है कि वास्तव में शून्य होना ही पूर्ण होना है। जब तक मैं हूँ तब तक शून्यता नहीं आ सकती है और पूर्णता में भी यही सबसे बड़ी बाधा है। लेकिन यह समझ बुद्धि से आगे कैसे बढे, आचरण में कैसे उतरे, व्यवहार में कैसे ढले यह बड़ी समस्या है। आगे चलने वाले कहते हैं-बढे चलो, निर्देश जैसे मिलते हैं-पालन करते जाओ, सब हो जाएगा। ऐसे में परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि आगे चलने वालों के पद्चिह्नों का अनुसरण करने की कृपा बनाए रखना।

*

जिसे 'कोरी पुस्तिका पढने में नीरसता नहीं लगती, वह शून्य की साधना से विचलित नहीं हो सकता। **– श्री चन्द्रप्रभ**

चलता रहे मेरा संघ

(संघशक्ति प्रांगण जयपुर में आयोजित विशेष शिविर में दिनांक 2.9.2017 को सुबह के सत्र में संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी के उद्‌बोधन का संक्षेप)

चयनित कर आप लोगों को बुलाया गया है इस शिविर में। लेकिन केवल आप चयनितों से ही नहीं बल्कि हम उन सभी लोगों से बात करेंगे जिनमें हम हमारा प्रचार-प्रसार करना चाहते हैं। निश्चित ही चयनित किए जाने का मापदण्ड श्रेष्ठता होती है। श्रेष्ठ लोगों का चयन किया गया है। मेरे दृष्टिकोण में आप लोग श्रेष्ठ लोगों में हैं। जो श्रेष्ठ नहीं हैं, उन्हें भी श्रेष्ठ बनाना है। विभिन्न शिकायतों का, अभावों का किसी प्रकार का रोना रोये बिना यदि आप यह कार्य करेंगे तो श्री क्षत्रिय युवक संघ की आकांक्षाओं के अनुरूप आप कार्य कर सकेंगे।

क्षत्रिय युवक संघ ने आपका ही चयन क्यों किया? चयन किया है तो क्या यह आपके लिये गौरव की बात नहीं है? हमारा जन्म राजूपत जाति में हुआ है जिसका गौरवमय उज्ज्वल इतिहास है। प्रभु की कृपा से हमारा चयन इस महान् कौम में हुआ, यह चयन हमारे लिये गौरव की बात है। कृपा यों ही नहीं बरसा करती। बरसात यों ही अकस्मात नहीं बरसा करती। तपन के बाद ही बरसात हुआ करती है। आपके जीवन में कोई तपन रही है। वह तपस्या ही सघन घन, बादल बनकर बरसती है। आपके कर्मों के कारण ही आपका चयन यहाँ हुआ है। यों समझें कि आपने ही अपने आप पर यह कृपा की है। ऐसे ही कर्म करते रहे तो आगे भी बरसात होगी, कृपा बरसेगी।

बरसात का यदि सदुपयोग होता है तो वह सबके लिये लाभदायक है। आपके कर्मों के अनुसार,आपकी तपस्या के फलस्वरूप जो कृपा बरसी, उस कृपा का लाभ अन्यों को भी मिले, यह इस चयन का औरों के लिये उपयोग है। कुंठित होकर न रहें, अवसर मिलने की कोई गाँठ न बन जाए। खुल-खुले से जाएँ। अगर कोई गांठ हो तो उसे यहीं खोलकर जाएँ, श्री क्षत्रिय युवक संघ यही प्रयास कर रहा है। जो मुक्त होते हैं, वे अन्यों की मुक्ति के लिये लग जाते हैं। दीपक का उपयोग है, अन्य दीपकों को जलाना। आपके जीवन का भी यही उपयोग है। यह शिविर आपको यह स्मृति दिलाने के लिये है कि आपने जो पाया है, वह बाटें। न पाया हो तो अब पाने में लग जाएँ। यदि जीवन में कोई उलझन है तो उसे सुलझाएँ। यही है हमारी कौम की, हमारे समाज की माँग।

इस वर्ष आप शाखा वर्ष मना रहे हैं। शाखाएँ बढाने पर विशेष ध्यान इस वर्ष दिया जा रहा है। आप बड़े भाग्यवान हैं कि आपको यह महत्त्वपूर्ण कार्य करने का अवसर मिला है। आपके कर्मफल जगे हैं जो आप ऐसा सद्‌कर्म कर रहे हैं। अन्य लोगों के कर्मफल नहीं जगे, इसलिए इस अवसर में वे भागीदार नहीं बन सके। कर्मफल जगे बिना विधाता भी कुछ नहीं कर सकता, कुछ नहीं दे सकता। भगवान भी कुछ नहीं कर सकता। आप इस महत्त्व को नहीं समझ रहे हैं। पू. तनसिंहजी ने कहा-'मिल गये वे शून्य में क्या खोजते हैं।' किन शब्दों में व किस भाषा में आप इस महत्त्व को समझेंगे। पूज्यश्री ने जो कहा-'कौम के अरमान मुझ में बोलते हैं।' अपने इस महत्त्व को आप तो समझें। कौम न समझे तो एक दिन समझ जाएगी। जिन पर अत्यधिक भरोसा हो वे यदि खरे न उतरें तो इसी को विश्वासघात कहते हैं। जो कार्य करने का संघ आप पर भरोसा करता है, वह न करके क्या आप श्री क्षत्रिय युवक संघ से विश्वासघात करेंगे?

समस्याओं से, नासमझी से, दुर्गुणों से घिरे हुए उसी संसार में हम विचरण कर रहे हैं जहाँ हर महापुरुष ने विचरण किया है। उन्हें इन्हीं सबका सामना करना पड़ा है। फिर हम अपनी दीनता और हीनता का रोना क्यों लिये बैठे हैं। श्री क्षत्रिय युवक संघ के पुण्य चरणों में आकर भी कोई दीन हीन रह गया तो संघ की क्या महानता हुई। ऐसे आह्वान पर आप बार-बार आते हैं और यदि कोरे के कोरे चले जाते हैं तो संघ के चरणों

में आने का नाटक ही रहा है, उसकी पुकार को अपनाया नहीं। संघ में आकर यदि आप रोओगे तो संघ रोएगा, आप हंसोगे तो संघ हंसेगा। अत: दीनता-हीनता का रोना नहीं रोना है, कर्म करने के मिले हुए अवसर का उपयोग करना है।

छोटे-छोटे निर्देश मान लो। बदलाव आएगा। संघ के निर्देश मानने में सुविधाओं का कुछ त्याग करना पड़ सकता है, पर बदलाव उसी से आएगा। बीज पौधे में बदलता है तो उसे तकलीफ से, कष्ट से गुजरना पड़ता है। उसे टूटना पड़ता है, पर टूटने पर ही अंकुर निकलेगा। धरती को फाड़कर अंकुर निकलता है। आप भी यदि संघ जीवन के अनुकूल बनने के लिये संघ निर्देश रूपी अपनी छाती को चीर डालेंगे तो संघ कार्य रूपी धरती की छाती को भी चीर देंगे। अपनी छाती को चीरते समय किसी प्रकार का भय नहीं हो और धरती की छाती चीरते समय किसी प्रकार का दया का भाव न हो। सुबह 4 बजे उठने का कहा जाता है तो उठने में क्या तकलीफ है। अन्य लोगों में 4 बजे उठने की आदत डालनी है, तो स्वयं को उससे भी पहले उठने का स्वभाव बनाना होगा। बीज को पहले अपनी छाती चीरने के कष्ट उठाने पड़ते हैं, तभी अंकुर फूटता है। आप चयनित बीज हो। जिसने आपको चयनित किया है उसने पहले अपनी छाती चीरी है, तभी आपको इस श्रेणी में आने का अवसर मिला है। आप बीज बन गए अत: अब सामान्य व्यक्ति नहीं हैं, जाग्रत रहें कि आपका व्यवहार इसके अनुरूप बना रहे।

शाखा वर्ष मनाना है, उसके लिये चेताया जा रहा है। चेतो, जागो, उठो, चलो। समग्र कांति का यही मार्ग है। उच्च प्रशिक्षण शिविर से तीन माह हो चुके हैं। पहली तिमाही के एक माह पहले आपको चेताया जा रहा है। आपको आगे लोगों को चेताना है। गणवेश पहनो, पहनाओ। जब आपको गणवेश पहने, संयमित रहते लोग देखेंगे तो श्री क्षत्रिय युवक संघ कितना प्रसन्न होगा। संघ की प्रसन्नता आपको आशीर्वाद देगी। वही आशीर्वाद पुन: बरसात करेगा। आपको जो जो कहा गया है, वह करना प्रारम्भ कर दो तो आपके जीवन में परिवर्तन का भूचाल आ जाएगा। भरोसा बनाए रखो। जो छोटी-छोटी बातें नहीं कर सकता वह बड़ा काम भी नहीं कर सकता। राम जी भी आपकी तरह नैराश्य में बह गए थे। वशिष्ठ ने उनकी निराशा को हटाया। श्री क्षत्रिय युवक संघ आपकी निराशा को दूर करता है।

जिन्दगी बीत रही है पर आपको इसकी कोई चिंता नहीं। पैसा खत्म होता है तो चिंता करते हैं पर जिन्दगी जैसी बहुमूल्य चीज खत्म हो रही है, उसकी आपकी कोई चिंता नहीं है। जीवन बीत रहा है, रीत रहा है। इसकी विकलता आनी चाहिए, पर यदि इसकी निराशा आ रही हो तो काम नहीं चलेगा। संघ ने आप पर जो भरोसा किया है, उस पर घात होगा तो आप आत्महन्ता बन जाएंगे। जो कहा गया है वह साल भर तक कर डालिए।

तीन माह निकले जा रहे हैं। 1996 में जो कहा गया, वह आपने किया और उसके अद्भुत परिणाम आए। अब भी उसी प्रयोग को दोहरा दो, कहना मान लो। उस समय यज्ञ किया था। अब भी यज्ञ करो लेकिन यज्ञ हो एक दूसरे में विलय का। स्वयंसेवक का संघ में विलय। वह संघमय ही बन जाए। आत्मा का भी विलय करो, वह परमात्मा में मिल जाए। यही हवन है। इसी में आपका, संघ का, समाज का कल्याण होगा।

क्षमताएँ खत्म हो रही हैं। छोड़ना कुछ नहीं है, पर भाव बदल देना है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना है। स्थूल को पकड़कर बैठ गए तो आगे बढ नहीं पाएंगे। जैसे-जैसे कहा जाय, वैसे-वैसे करते चलो। औरों से हमें जो करवाना है, वह पहले आप कर लो अन्यथा आप नहीं करवा पाएंगे। गफलत आपको ही होगी। इसलिए अपने आप को भी कभी माफ मत करो कि कहा गया कर नहीं पाए। आप स्वयं तैयार हो जाओ ताकि आप लोगों को तैयार कर सको। यहाँ हर माह दो शिविर लगेंगे, उसको गति प्रदान करने के लिये सहयोग करें। आपका उत्साह न हो तो शिविर नहीं लगाएंगे। इन

(शेष पृष्ठ 12 पर)

गतांक से आगे

निराकार ध्यान

– स्वामी यतीश्वरानन्द

चेतना की अवस्थाएँ :

देह हमारी चेतना का केन्द्र हो सकती है। मन हमारी चेतना का केन्द्र हो सकता है। जीवात्मा हमारी चेतना का केन्द्र हो सकती है। परमात्मा हमारी चेतना का केन्द्र हो सकते हैं। और हमारा समग्र दृष्टिकोण, हमारा सारा चिंतन और कार्य इस बात पर निर्भर करते हैं कि हमने चेतना के किस केन्द्र को चुना है और हमारे गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र कहाँ है।

हमारी चेतना की दो अवस्थाएँ हो सकती हैं। हम अपनी आत्मा को चेतना का केन्द्र बनाकर उसके संदर्भ से अनन्त परमात्मा का अनुभव करें अथवा अनन्त परमात्मा को चेतनाकेन्द्र बनाकर आत्मा का उसकी अभिव्यक्ति के रूप में अनुभव करें। आत्मा को चेतना का केन्द्र बनाकर अनन्त परमात्मा का उसके चारों ओर वृत्त के रूप में अनुभव किया जा सकता है, अथवा अनन्त परमात्मा को चेतना का केन्द्र बनाकर आत्मा को उसमें विद्यमान बिन्दु के रूप में अनुभव किया जा सकता है। प्रत्येक आत्मा एक बिन्दु के समान है और ईश्वर वृत्त के प्रत्येक बिन्दु को जोड़ने वाले ज्योति के अनन्त सागर के समान है। प्रारम्भ में ये सारी बातें काल्पनिक हो सकती हैं, लेकिन अन्त में ये ही अनुभूतियाँ हो जाती हैं।

हमें निम्नोक्त तीन में से किसी एक आध्यात्मिक भाव में बने रहने का प्रयत्न करना चाहिए :

1. व्यक्तित्व को एक सत्ता में विलीन करके एकत्व का चिंतन करना।

2. अनन्त परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करने के बाद व्यक्तित्व का अनुभव केवल उसकी एक अभिव्यक्ति के रूप में करना।

3. स्वयं को एक व्यक्ति समझकर उस अन्तर्यामी सर्वव्यापी सत्ता के सान्निध्य का अनुभव करना, जो हमारी आत्मा की परम-आत्मा है, तथा जिस पर आत्मा पूर्णरूपेण आश्रित है।

जब तक अहं विद्यमान है, तब तक अनन्त परमात्मा के साथ (2) या (3) के भाव से जुड़े रहें। अहंकार को परमात्मा से अधिक सत्य कभी न होने दें। एकत्वबोध को दृढ़ करने के लिये पूर्वोल्लिखित अद्वैतपरक श्लोकों की आवृत्ति की जा सकती है। धीरे-धीरे ऊपर उठो। सर्वश्रेष्ठ सद्गुणसम्पन्न भगवद्रूप के ध्यान से सगुण निराकार तक उठो। उसके बाद निर्गुण निराकार सत्मात्र तक पहुँचो।

और प्रत्यावर्तन करते समय विपरीत क्रम का अवलम्बन करो। ऐसा करने पर तुम पाओगे कि देहात्मबोध प्रबल होने पर भी जीव का भगवदाश्रय और संस्पर्श सर्वदा बना रहता है।

अपुरुषविध ध्यान :

निम्नोल्लिखित निराकार ध्यानों में से किसी का भी अभ्यास किया जा सकता है :

1. साधक कल्पना करे कि वह एक अखण्ड, अनन्त, अनादि, अविभाज्य सच्चिदानन्द सागर में मीन की तरह मुक्त होकर तैर रहा है।

2. साधक कल्पना करे कि वह एक अखण्ड, अनन्त आकाश में बिना किसी व्यवधान के पक्षी के रूप में उड़ रहा है।

3. साधक जल में डुबाए गये पात्र के समान है, जिसके भीतर-बाहर जल ही जल है।

4. साधक स्वयं की, एक अखण्ड ज्योतिसागर में निमज्जित चैतन्य ज्योति के रूप में कल्पना करे।

ज्योति के एक बिन्दु के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करो। अब उसे अनन्त ज्योतिपुञ्ज का अंश समझो। अन्त में अपने ज्योतिबिन्दु को फैलाओ अथवा उसे अनन्त-ज्योति में विलीन कर दो अथवा उसे इधर-उधर आने जाने दो। लेकिन सर्वत्र ज्योति ही हो। यह ध्यान का एक उत्तम प्रकार है।

खगोलशास्त्र का कुछ ज्ञान हमें विराट् का भाव प्रदत्त करता है। हम अनन्त की धारणा नहीं कर सकते, किन्तु विराट् का चिंतन कर सकते हैं और उसे धीरे-धीरे बृहत् और बृहत्तर कर सकते हैं। अन्तरिक्ष की व्यापकता का तथा तारों और आकाशगंगा के अचिन्तनीय विस्तार का चिंतन करो। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है :

यश्चन्द्रतारके तिष्ठंश्चन्द्रतारकादन्तरः यं चन्द्रतारकं न वेद यस्य चन्द्रतारकं शरीरम्,

यश्चन्द्रतारकमन्तरों यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः।।

अनन्त परमात्मा सभी ग्रह-नक्षत्रों (चन्द्र-तारकों) में विद्यमान है। वह उनके भीतर और बाहर है और वही अनन्त मानवों में भी है।

सान्त, क्षुद्र, छोटे, ससीम का चिंतन करने की अपेक्षा अनन्त, विराट् सौरमण्डल, तारागण, आकाश गंगा और नीहारिका कहे जाने वाले, जन्म ले रहे, नए नक्षत्र मंडलों का चिंतन करना श्रेष्ठतर है। और उसके बाद पृथिवी, आकाश, सौर मण्डल, इत्यादि सभी को अनन्त, अखण्ड ज्योतिसागर में विलीन कर दो।

हिन्दुओं के प्रसिद्ध अतिपुरातन, धार्मिक स्तोत्रों में से एक, ''पुरुषसूक्त'' में वैदिक ऋषि कहते हैं : यह समस्त अभिव्यक्त जगत् परमात्मा की महिमा का एक अंशमात्र है। आखिर वह परमात्मा का एक छोटा-सा अंश मात्र ही तो है।

जब कभी हमारा मन क्षुद्र, ओछी, सामान्य, मूल्यहीन वस्तुओं का चिंतन करने से संकीर्ण हो जाए, तब हमें ऐसा उन्नत करने वाला चिंतन करना चाहिए। आकाश की तथा असंख्य सौर मण्डलों की व्यापकता का चिंतन करो। लेकिन यह ध्यान रखो कि तुम इन सभी अभिव्यक्तियों में परमात्मा का-प्रकृति में स्थित परमात्मा का, आकाश में स्थित परमात्मा का-न कि परमात्मा के रूप में प्रकृति का, चिंतन करो।

कभी-कभी मन को एकाग्र करने के लिये हमें पुरुषविध या अपुरुषविध कुछ ठोस रूपों की आवश्यकता होती है। अन्यथा अधिकांश लोगों के लिये मन को एकाग्र करना सम्भव नहीं हो पाता। निर्दिष्ट आकार युक्त प्रत्यय के बिना हमारे लिये मन को केन्द्रित करना तथा एकाग्र करना सम्भव नहीं है। जो भी हो, अधिकांश लोग ऐसा नहीं कर पाते।

अतएव, ध्यान के लिये किसी निर्दिष्ट ठोस ससीम वस्तु की आवश्यकता है। यहाँ रूप-विशेष का चयन व्यक्ति की अभिरुचि पर निर्भर करता है। ससीम का ध्यान करने में निपुण होने पर, ससीम में विद्यमान असीम का ध्यान करने का प्रयत्न करना चाहिए। ससीम और असीम के बीच सम्बन्ध स्थापित कर ससीम को असीम की एक अभिव्यक्ति समझकर किया जाने वाला ध्यान अत्यन्त उत्कृष्ट होता है, लेकिन ससीम को कभी भी परमात्मा नहीं समझना चाहिए। साधक को ससीम रूपों की पृष्ठभूमि में विद्यमान असीम को देखना चाहिए, लेकिन उसे ससीम रूपों को परमात्मा नहीं समझना चाहिए। पहली स्थिति में वह परमात्मा को महत्त्व देता है, किन्तु दूसरी स्थिति में वह रूपों पर बल देता है, जो अत्यन्त हानिकारक है, तथा मोह का कारण होता है। ससीम का असीम की अभिव्यक्ति के रूप में ध्यान करने में तीव्रता भी होती है और व्यापकता भी। यही ढंग से किया गया इस प्रकार का ध्यान उत्कृष्ट है।

इन सभी ध्यानों के दौरान हमें अपने आत्मा होने के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सत्य को नहीं भूलना चाहिए। चाहे हम ससीम रूप का ध्यान करें या निराकार का, हमें स्वयं को आत्मा समझना चाहिए। और हमें सदा याद रखना चाहिए कि परमात्मा आत्मा की अपेक्षा अधिक व्यापक और सत्य है। जैसा कि शंकराचार्य ने कहा है :

सत्यापि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः।।

नाथ! लहरें समुद्र में विलीन होती हैं, समुद्र लहरों में नहीं। जब मेरी समस्त सीमाएँ दूर हो जाती हैं तब मैं तुममें विलीन होता हूँ, तुम मुझमें नहीं।

परमात्मा में लीन हो जाओ :

आध्यात्मिक चेतना के उच्चतर स्तरों पर साधक दृश्यजगत् को पूरी तरह भूल जाता है। श्रीरामकृष्ण वचनामृत में इस बात को पक्षी पर निशाना लगा रहे शिकारी के दृष्टान्त से समझाया गया है। शिकारी अपने कार्य में इतना लीन था कि उसे पास से जाती हुई कोलाहलपूर्ण बारात का भी भान नहीं था।

आध्यात्मिक जीवन का यह मूलभूत सिद्धान्त है कि जिसे भी हम सत्य समझते हैं, वह हमारी समग्र शक्ति, बुद्धि, मन और कार्यक्षमता को अपनी ओर खींच लेता है। यदि हम इस जगत् को सत्य मानें, तो हम उसी में तल्लीन हो जाते हैं। वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म चिंतन में अत्यधिक लीन रहता है। यदि तुम आध्यात्मिक जीवन यापन करना चाहते हो तो यह जगत् तुम्हें आत्मा से अधिक सत्य प्रतीत नहीं होना चाहिए। भगवान् को समग्र जगत् से अधिक सत्य समझे बिना द्वैतवादी भी नहीं हुआ जा सकता। एक द्वैतवादी भी जगत् को ईश्वर की तुलना में निम्नतर स्तर की सत्ता मानता है। परमात्मा ही एकमात्र नित्य और अमर हैं। कोई भी धर्म, जगत् को उतना सत्य नहीं समझता, जितना परमात्मा को।

अद्वैतवाद प्रारम्भ से ही दृढ़तापूर्वक कहता है कि संसार असत्य है तथा परमात्मा ही एकमात्र सत्य है। द्वैतवाद जगत् को सत्य मानकर चलता है और जगत् को सत्ता प्रदान करने वाले परमात्मा का अनुसंधान करने का प्रयत्न करता है। लेकिन चाहे द्वैतवादी के रूप में अथवा अद्वैतवादी के रूप में साधना का शुभारम्भ किया जाए, जब अतीन्द्रिय अनुभूति होती है, तब साधक की चेतना से दृश्य-जगत् विलुप्त हो जाता है। द्वैतवाद और अद्वैतवाद जीव और परमात्मा के सम्बन्ध को प्रदर्शित करने वाले शब्द हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है जिसे स्मरण रखना चाहिए। जगत् की सत्यता या असत्यता जिज्ञासा का विषय नहीं है। परमात्मा अधिक सत्य है, इस बात पर जोर देना, तथा उनके साथ सम्पर्क स्थापित करना, अधिक महत्त्वपूर्ण है।

अपनी विलग सत्ता को परमात्मा के साथ कैसे जोड़ें? अंश को पूर्ण के साथ कैसे संयुक्त करें? आध्यात्मिक जीवन में यह हमारा प्रस्तुत कार्य है, और जिस मात्रा में हम यह करने में समर्थ होंगे, उसी मात्रा में हम अधिक आध्यात्मिक, मुक्त और प्रबुद्ध होंगे।

स्वयं के सम्बन्ध में अपनी धारणा को परिवर्तित करने में इसका रहस्य निहित है। यदि हम अपनी देह के साथ तादात्म्य स्थापित करेंगे, तो यह जगत् और उससे सम्बन्धित सभी बातें स्वाभाविक रूप से सत्य प्रतीत होंगी। स्वयं को आत्मा समझने पर ही परमात्मा सत्य प्रतीत होते हैं। हम देह हैं, स्त्री अथवा पुरुष हैं, कर्ता और भोक्ता हैं, इन विचारों को निरस्त कैसे करें? प्रबल विपरीत चिन्तनप्रवाह पैदा करो। इसे इतना प्रबल और सजीव बनाओ कि अन्य सभी मिथ्या विचार धूमिल हो जाएँ। प्रत्येक साधक को वह चाहे अद्वैत के सिद्धान्त में विश्वास करता हो अथवा द्वैत के सिद्धान्त में, यह कार्य करना चाहिए। उसे स्वयं को देह और मन से निर्लिप्त स्वयंप्रकाश आत्मा समझना चाहिए। उसे इस सत्य का गहराई के साथ तब तक मनन करना चाहिए, जब तक वह उसके व्यक्तित्व में गहरा बैठकर उसके जीवन के प्रति दृष्टिकोण का कायापलट न कर दे।

पवित्रता की उपलब्धि का यही रहस्य है। आत्मा नित्यशुद्ध है, जो हमारा वास्तविक स्वरूप है। चाहे कितना भी प्रयत्न करें, अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार किए बिना हम वास्तविक पवित्रता की उपलब्धि नहीं कर सकते। वस्तुत: आत्मा का देह, इन्द्रियों तथा मन के साथ तादात्म्य ही समस्त अपवित्रता का मूल कारण है। *(क्रमश:)*

आत्मा रत्नचिंतामणि है। स्वयं जैसी कल्पना करते हैं, वैसे हो जाते हैं।

– दादा भगवान

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

विवाह एक ऐसा पवित्र बन्धन है जो पूरे परिवार व रिश्तेदारों को खुशियों से भर देता है। विवाह के समय सभी के चेहरों पर प्रसन्नता झलकती स्पष्ट देखी जा सकती है। जिन घरों में लड़के-लड़की की शादी होने वाली होती है तो चारों ओर प्रसन्नता व खुशियों की बहार देखी जा सकती है। जिनके घर में लड़का या लड़की विवाह योग्य हो गये हैं या होने वाले हैं, उन्हें इस मौके की खुशी का इन्तजार रहता है। पूज्य श्री तनसिंहजी भी शादी की उम्र के हो गये थे तो माँसा को भी इस खुशी का इन्तजार था।

माँसा ने बताया-''एक दिन वह (पूज्य श्री तनसिंहजी) बोला, हैदराबाद (अब पाकिस्तान में) में राजपूत सभा की मीटिंग है, मैं भी वहाँ जा रहा हूँ। वह वहाँ गया। वहाँ क्या हुआ? उसने क्या किया? मुझे मालूम नहीं, पर इस मीटिंग के थोड़े ही समय बाद छोल से समाचार आया कि श्री राणसिंहजी सोढा अपनी कन्या का सम्बन्ध मेरे पुत्र के साथ करना चाहते हैं। राणसिंहजी के परिवार के सुसंस्कारों से व उनकी प्रतिष्ठा से मैं पहले से ही परिचित थी। अत: मैंने यह सम्बन्ध स्वीकार कर लिया।''

''26 जून, 1947 को खेतसिंह का कड़िया (छोल) जिला थारपारकर (पाकिस्तान) के ठाकुर राणसिंह सोढा गंगदासोत की पुत्री बाईराजकुंवर नख-शिख सज-धजकर दुल्हन के रूप में मेरी पुत्र वधू बनकर मेरे घर आई तो मेरी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। मेरी पुत्र वधू मेरे घर की शान व शोभा बनकर घर के उजाले के रूप में जब उसने गृह प्रवेश किया तो मेरे आंगन को सुहाग मिला। उस वक्त मुझे जो अपार खुशी व प्रसन्नता मिली उसका बखान नहीं किया जा सकता। लम्बे अर्से के बाद मुझे जो खुशी मिली, यह मेरी पहली खुशी व प्रसन्नता थी। मुझे सुख और शान्ति का अहसास हुआ।''

पूज्य श्री तनसिंहजी जब पढने की उम्र के हो गये तब से लेकर पढाई पूरी करने तक माँसा से दूर ही रहे। पढाई के प्रारम्भ में माँसा को मजबूरी में अपने लाल से दूर गाँव रामदेरिया में रहना पड़ा और पूज्य श्री तनसिंहजी को पढाना था इसलिये बाड़मेर में उन्हें रखना पड़ा। तत्पश्चात् जोधपुर में राजपूत स्कूल चौपासनी में पढे। माँसा के लिये तो जोधपुर भी विदेश ही था। सन् 1942 में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर पिलानी पढने गये। पिलानी से स्नातक की डिग्री प्राप्त कर आगे कानून की पढाई करने नागपुर गये। सन् 1949 में नागपुर से कानून की पढाई पूरी कर बाड़मेर आये और जीवन व्यापन हेतु वकालत शुरू की। बेटा लम्बे समय से अपने पैतृक गाँव से दूर ही रहा था। जब पुत्र पढ-लिखकर योग्य बन घर लौटा तो माँसा को अत्यधिक प्रसन्नता व खुशी हुई व उनके कलेजे को बड़ी ठण्डक मिली। उन्हें सुख और शान्ति का अहसास हुआ। यह माँसा को मिलने वाली दूसरी खुशी व प्रसन्नता थी।

पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपनी शिक्षा पूरी कर बाड़मेर में वकालत शुरू की। यहाँ से ही उन्होंने राजनीति में प्रवेश किया। ज्योंहि नगरपालिका के चुनाव आये तो पूज्य श्री ने चुनाव में खड़ा होने का निश्चय किया। वे जो भी कार्य करते माँसा की स्वीकृति लेकर ही आगे का निर्णय करते।

माँसा ने बताया-''नगर पालिका का चुनाव आया और एक दिन उसने मुझसे कहा-'मुझे आशीप दो, विजयी होने की, मैं चुनाव में खड़ा हो रहा हूँ।' वह चुनाव में खड़ा हुआ और बाड़मेर नगरपालिका के जीनगर मौहल्ला से सर्वाधिक मतों से पार्षद के रूप में विजयी होकर सन् 1949 में नगरपालिका बाड़मेर का प्रथम अध्यक्ष बना।''

पूज्य श्री तनसिंहजी का नगर के विकास व सुव्यवस्था में अति सराहनीय योगदान रहा। अध्यक्ष के पद पर रहते उन्होंने नगरपालिका के काम निपटाने में बड़ी तत्परता दिखाई। नगरपालिका की सौ से अधिक

पत्रावलियों का निस्तारण एक ही रात्रि में कर अपनी कर्मठ कार्यक्षमता का परिचय दिया। वे कड़ी मेहनत के परिचायक थे।

पूज्य श्री के पिता ठाकुर बलवन्तसिंहजी के समय उनके बाड़मेर स्थित मकान पर दिन-रात आने-जाने व मिलने वालों का सदा मेला लगा रहता था। उनके देहान्त के बाद वही मकान बिल्कुल सूना पड़ गया। कारण-लोग बड़े स्वार्थी व मतलबी होते हैं। जब तक उनका काम बनता रहा, होता रहा, तब तक तो हजूरी करते रहे, हाँ में हाँ मिलाते रहे पर जब अपना मतलब पूरा होता नहीं दिखा तो उन्होंने पीठ फेर ली, पराये बन बैठे। दुनियादारी में ऐसा आम देखा गया है।

बाड़मेर में पूज्य श्री तनसिंहजी ने ज्योंहि वकालत प्रारम्भ की, भाग्य ने करवट बदली या स्वार्थी लोगों को अपना मतलब पूरा होता दिखा, जो भी हो, पिताश्री के स्वर्गवास के बाद से सूने पड़े मकान पर फिर लोगों का आना-जाना शुरू हो गया। बुरे दिनों में जिन्होंने पीठ फेर ली थी, पराये बन बैठे थे, वे ही अब अपनत्व जताने लगे। फिर उसी मकान में वही जमघट, वही कोलाहल शुरू हो गया जो उनके पिताश्री के समय था।

माँसा ने बताया-''सन् 1949 में उसने अध्ययन पूरा किया और यहीं बाड़मेर में वकालत प्रारम्भ कर ली। भाग्य ने पूरी करवट बदली भी नहीं थी, कि लोगों ने शीघ्रतापूर्वक पलटा खाना शुरू कर दिया। थोड़े ही समय में मैंने देखा लोगों का फिर आना-जाना होने लगा है। उन्हीं लोगों का, जो कभी बड़ी बेरहमी से बिना इधर देखे इस घर के पास से गुजर जाते थे, जैसे वे जानते ही नहीं है कि यह घर भी किसी हमारे ही अपने का है। मैंने मन ही मन समझ लिया कि यह दुनिया भी तभी साथ देती है जब भाग्य साथ देता है। भाग्य आया तो सहयोग भी दौड़ा आया, योग्यता आई तो लक्ष्मी भी दौड़ी आई और पुरुषार्थ आया तो लोग भी दौड़े आये। फिर वही कोलाहल वही जमघट जो उसके पिता के समय देखा करती थी।''

पृष्ठ 7 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

शिविरों में हर व्यक्ति को आना है, यह आप व्यवस्था करें। इससे आपको कार्य में सहयोग मिलेगा। हर स्वयंसेवक को यहाँ भेजना आपका दायित्व है। आप जैसा बीज बोएंगे वैसा ही फल पाएंगे। इस शिविर को गंभीरता से लेंगे तो लाभ मिलेगा। अत: अपने को बदलने, विलय करने के लिये तैयार रखें। इसमें किन्तु-परन्तु न लगाएँ। विशुद्ध रूप से जो कहा गया हो वही करें। न उसमें कुछ जोड़ना है, न उसमें से कुछ घटाना है, अब तक जो बीता सो बीता, अब चेतो। जैसा कहा है, वैसा ही करना है, उसमें जो सहयोग चाहिए वह लो।

एक व्यक्ति रात को 10 बजे बाद मेहमान आया। वह बीड़ी पीने का आदी था। उसके पास बीड़ी खत्म हो गई थी। दूसरा व्यक्ति थोड़ी देर बाद आया और वह भी बीड़ी पीता था। पहले व्यक्ति ने दूसरे से पूछा-बीड़ी है? दूसरे ने कहा-हाँ है, दो हैं, एक-एक पी लेंगे। एक-एक पी ली। दूसरे व्यक्ति के पास सिर्फ दो ही थी पर उसने देने में कंजूसी नहीं की, दोनों निकाल दी जबकि उसे पता था कि यहाँ आस-पास बीड़ी कहीं मिलेगी नहीं। अनपढ़ व्यक्ति ऐसी हिम्मत कर सकता है, पढा-लिखा कई बहाने करना जानता है। लोग आपको देखते हैं। रोओगे, हंसोगे, त्याग करोगे, सब लोग देखेंगे। अत: जो है सो छिपाओ नहीं। संघ के लिये पूरी कार्यशक्ति दे दो।

थोथे ज्ञान की आवश्यकता नहीं। भूलें नहीं कि लगातार कोई आपको देख रहा है। आपको अपने जीवन से अन्यों को बहुत कुछ सिखाना है। करना पड़ेगा, करना है, करेंगे। ये तीनों बातें याद रखेंगे। छोटे-छोटे काम करो, स्वयंसेवक बन जाओगे। आपसे लोग प्रेरणा लेंगे। बड़े काम लोग कम देखते हैं, छोटे काम सब देखते हैं, गौर से देखते हैं। चार घण्टे पूजा के नाम से बैठने की बजाय शाखा में जाना, शाखा में अन्यों को ले जाना, भेजना ज्यादा प्रभाव डालता है। अपने लिये निर्दयी बनो, पर अन्यों के लिये नहीं। अन्यथा न चेतेंगे, न जागेंगे, न उठेंगे, न चलेंगे।

कमजोरी

– गिरधारीसिंह डोभाड़ा

कमजोरी (*Weakness*) जिस किसी में होती है तो वह उसके धारक के पतन का कारण बनती है। कमजोरी ही उसके धारक का विनाश करती है। किसी भी व्यक्ति के अन्दर किसी भी प्रकार की कोई कमजोरी है और उसकी कमजोरी का पता उसके प्रतिस्पर्द्धी या उसके दुश्मन को लग जाता है तो वह व्यक्ति अपने प्रतिस्पर्द्धी की कमजोरी का लाभ उठाकर उसको पराजित कर देता है, उसका सर्वनाश कर देता है या उसको अपने वश में करके उसे अपना गुलाम बना देता है। जिन्दगी भर के लिये उसे अपने आधीन कर लेता है।

भगवान ने इस धरती पर भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राणियों का सृजन किया है। किसी को दो पैर और दो हाथ दिए हैं तो किसी को चार पैर दिए हैं। किसी को सींग दिए तो किसी को हवा में उड़ने के लिये दो पर (पंख) दिए। किसी को तीक्ष्ण दांत दिए तो किसी को लम्बे पैर दिए। गाय-सांड को सींग दिए जिससे अपनी रक्षा कर सके तो किसी को डरा भी सके। शेर और बाघ जैसे हिंसक प्राणियों को तीक्ष्ण दांत व नुकीले नाखून वाले पंजे दिए जिससे वह अपने आहार के लिये अन्य प्राणियों का शिकार भी कर सके और अपनी रक्षा भी कर सके।

भगवान ने सुन्दर घोड़ा बनाया। उसे शक्तिशाली पांव दिए जिससे वह तेज दौड़ सके। आज हमें किसी यंत्र की शक्ति का नाप बताना हो तो *Horse Power* की नाप से बताते हैं। भगवान ने इतनी शक्ति घोड़े को दी है, लेकिन उसे अपनी रक्षा के लिये न तो सींग दिए हैं और न ही तीक्ष्ण दांत या नुकीले पंजे दिए हैं। हालात यह होती थी कि सींग व तीक्ष्ण दांतों वाले प्राणी आसानी से घोड़े को मार देते थे। यहाँ तक कि कुत्ते भी घोड़े को काट खाते थे। बेचारा घोड़ा अपनी इस हालात से बहुत परेशान था। खाने को इतनी सारी हरी घास धरती पर बिछी रहती थी फिर भी घोड़ा अपनी सुरक्षा की चिंता में निर्भय होकर पूरी तरह पेट भर कर घास खा भी नहीं सकता था। अपनी सुरक्षा की चिंता में दिन-ब-दिन दुबला होता रहता था, उसे कोई उपाय सूझ नहीं रहा था।

एक दिन हरे घास के मैदान से एक मनुष्य निकला। वह मनुष्य धनुष बाणों से सज्ज था। कमर में खड़ग था तो हाथ में भाला था। उसने उस मैदान में एक घोड़े को देखा। घोड़ा दुबला था। मनुष्य को आश्चर्य हुआ कि इतनी अच्छी हरी-कोमल घास है, फिर भी यह घोड़ा दुबला क्यों है? यह जानने की जिज्ञासा से वह मनुष्य उस घोड़े के पास गया। वहाँ जाकर उसने घोड़े से पूछा कि तुम्हें खाने के लिये इतनी अच्छी हरी-हरी घास मिली है, फिर भी तू दुबला क्यों है? घोड़े ने कहा कि सामने उस गहरे जंगल को देखते हो? मनुष्य का उत्तर था-हाँ जंगल तो बहुत घना और बहुत बड़ा है।

घोड़ा-उसमें हिंसक प्राणी रहते हैं। मनुष्य-हाँ रहते तो हैं लेकिन इससे क्या मतलब है? घोड़ा-यही तो समस्या है। जब मैं घास खाने के आनन्द में मगन हो जाऊँ और कोई हिंसक प्राणी आकर मेरा शिकार कर ले तो मेरी तो जिन्दगी ही समाप्त हो जाय न। मनुष्य-तो तू अपनी रक्षा क्यों नहीं करता? घोड़ा-कैसे मैं अपनी रक्षा करूँ, मेरे न तो सींग हैं, न ही तीक्ष्ण दांत और नुकीले पंजे हैं? हाँ, तुम मेरी सहायता कर सकते हो। तुम्हारे पास तो शस्त्र हैं, तुम अपने इन शस्त्रों से उन हिंसक प्राणियों को मार सकते हो और मेरी रक्षा कर सकते हो।

मनुष्य-हाँ मैं अपने शस्त्रों से उन्हें मार तो सकता हूँ, लेकिन एक समस्या है। जब तक मैं उन पर निशाना साधूं, इतने में तो वे भाग खड़े हो जांय। मैं इतनी गति से उनका पीछा नहीं कर सकता। पैदल दौड़ कर उनका पीछा कैसे किया जा सकता है। घोड़ा-इसका उपाय मेरे पास है। मैं तेज दौड़ सकता हूँ। तुम मेरी पीठ पर सवार हो जाना, मैं उनका पीछा करूंगा और तुम अपने शस्त्रों से उन पर वार करना। हम दोनों मिलकर उनका शिकार कर देंगे। मनुष्य-हाँ, यह उपाय-यह तरकीब तो अच्छी

है फिरभी इसमें भी एक समस्या है। मुझे तुम्हें जिस ओर मोड़ना हो और जहाँ रोकना हो, वह कैसे संभव होगा? घोड़ा–इसका भी उपाय है। तुम मेरे मुँह में लगाम डाल दो, फिर मुझे जिस प्रकार मोड़ना हो, रोकना हो, रोक सकोगे और मुझे नियंत्रित कर सकोगे।

मनुष्य ने घोड़े के मुँह में लगाम डाल दी। घोड़ा बहुत ही प्रार्थना कर रहा है, आजीजी–विनती कर रहा है, चिल्ला भी रहा है फिर भी मनुष्य घोड़े के मुँह से लगाम नहीं निकाल रहा है। अब तो घोड़े की कमजोरी मनुष्य के हाथ लग गई है। तब से घोड़ा आज तक मनुष्य का गुलाम बना हुआ है। मुंह में लगाम ही घोड़े की कमजोरी है जो मनुष्य के हाथ लग गई है।

व्यक्ति की अपनी एक ही कमजोरी किसी भी महान से महान व्यक्ति का सर्वनाश कर देती है। उसका विनाश कर देती है, चाहे व्यक्ति शक्तिशाली हो, सामर्थ्यवान हो, बुद्धिमान हो, धर्म और नीति का ज्ञाता हो?

महाभारत का युद्ध चल रहा था। कौरवों के सेनापति महान योद्धा, महारथियों के भी महारथी, परशुराम शिष्य भीष्म पितामह थे। युद्ध में हर दिन पाण्डव पक्ष के हजारों सैनिकों का संहार कर रहे थे। भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को विजयश्री का आशीर्वाद दिया था। धर्मराज युधिष्ठिर पितामह के उस आशीर्वाद को पितामह को वापस लौटाने गये थे। क्योंकि विपक्ष में लड़ रहे पितामह के होते हुए पाण्डवों को विजयश्री का मिलना असम्भव था। पितामह ने युधिष्ठिर से कहा,–''मैं दिए हुए आशीर्वाद को वापस तो नहीं ले सकता हूँ लेकिन मुझे परास्त करने का एक ही उपाय है। यदि कोई स्त्री मेरे सामने आ जाएगी तो मैं उसके सामने हथियार नहीं उठाऊँगा। उसकी ओर मैं वार नहीं करूंगा। यही मुझ में कमी है।'' महारथी भीष्म की कमजोरी (*Weak-Point*) पाण्डवों के हाथ में आ गयी। दूसरे दिन के युद्ध में अर्जुन के साथ उसके रथ में महारथी शिखण्डी भी था। अर्जुन ने पितामह पर बाणों की वर्षा की लेकिन पितामह ने अर्जुन के प्रति एक भी बाण नहीं चलाया और अर्जुन के बाणों से घायल होकर धरती पर गिर पड़े। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि भीष्म शिखण्डी को एक नारी का अवतार मानते थे। वे नारी पर कभी वार नहीं करते। पाण्डवों ने भीष्म की इस कमजोरी का लाभ उठाया और उस महान योद्धा को बाण शैया पर लेटा दिया।

महान योद्धा आचार्य द्रोण का पुत्र प्रेम भी उनकी एक कमजोरी थी। अपनी संतान के प्रति प्रेम तो हर एक पिता का होना ही चाहिए, लेकिन इतना नहीं कि वह उसकी कमजोरी बन जाय। महाभारत के युद्ध में भीम ने अश्वस्थामा नामक हाथी को मार दिया और जोर से कहा कि मैंने अश्वस्थामा को मार दिया। द्रोण ने जब यह सुना तो उनके हाथ से धनुप छूट गया और निराश होकर रथ से उतरकर भूमि पर बैठ गए। धृष्टधुम्न ने इसका लाभ उठाकर उनका शिरच्छेद कर दिया। ऐसा क्यों हुआ? उस महान योद्धा के हाथ से शस्त्र क्यों छूट गया? क्योंकि उनके पुत्र का नाम भी अश्वस्थामा था जो स्वयं योद्धा था और कौरव पक्ष की ओर से लड़ रहा था। पुत्र की हत्या की खबर सुनकर वे निराश हो गये। पुत्र उनकी कमजोरी रूप था अत: वे पुत्र हत्या का समाचार जानकर, सह नहीं सके। उनकी इस कमजोरी का लाभ भीम ने उठाया और अश्वस्थामा नामक हाथी को मारकर जोर से चिल्लाया कि मैंने अश्वस्थामा की हत्या कर दी है।

अंगराज कर्ण महारथी था। वह महान धनुर्धर था। वह महान दानेश्वर था। वह सुबह सूर्य देव की पूजा करता था। उसका नियम था कि जब वह सूर्य देव की पूजा करके उठेगा उस समय कोई भी याचक उसके पास मांगने आयेगा तो वह उसे निराश नहीं करेगा। कर्ण का जन्म उसके कवच व कुण्डल के साथ हुआ था। कर्ण के ये कवच व कुण्डल जब तक उसके शरीर के साथ जुड़े रहेंगे तब तक कोई उसे मार नहीं सकता था। कर्ण भी महाभारत युद्ध में दुर्योधन के पक्ष में रहकर युद्ध करने जा रहा था। उसका लक्ष्य अर्जुन का वध था। इन्द्रदेव कर्ण से अर्जुन की रक्षा करना और अर्जुन के हाथों कर्ण का वध कराना चाहते थे। लेकिन जब तक कर्ण के पास

उसके कवच व कुण्डल हैं तब तक कोई महारथी कर्ण का वध नहीं कर सकता था। अत: जब कर्ण सूर्य पूजा कर उठा, उसी समय इन्द्र ब्राह्मण का भेप लेकर याचक के रूप में कर्ण के पास गये और कवच व कुण्डल मांगे। कर्ण ने यह जानते हुए भी कि ये इन्द्र हैं, कोई ब्राह्मण नहीं है, उसने अपने कवच व कुण्डल दे दिये। क्यों? क्योंकि वह अपने नियम से बंधा था। इन्द्र ने इसी कमजोरी का लाभ उठाया और कवच व कुण्डल रहित कर्ण का अर्जुन ने वध कर दिया। सूर्य पूजा के बाद याचक को इन्कार न करना कर्ण की कमजोरी साबित हुई जो उसकी मृत्यु का कारण बनी।

विश्व में आज तक महाभारत युद्ध जितना बड़ा और भयंकर मानव संहार वाला युद्ध नहीं हुआ। इस महायुद्ध का निमित्त-कारण दुर्योधन तो था ही लेकिन धर्मराज युधिष्ठिर भी तो कम जिम्मेवार नहीं ठहराये जाते। जुआ खेलने का उनका शौक भी तो इस युद्ध के कारणों में से एक है। जुए का शौक युधिष्ठिर की एक कमजोरी थी। इस कमजोरी के कारण ही तो उन्होंने नीति विरुद्ध जाकर अपनी पत्नी तक को दाव पर लगाया था। जुए में द्रौपदी को हार जाने के कारण दुर्योधन, दुशासन व कर्ण द्वारा भरी सभा में जो अपमान हुआ, जिसके कारण द्रौपदी को अपने केशों को दुशासन के खून से रंगने की प्रतिज्ञा करनी पड़ी थी। भीम को भी अनैतिक प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि वह दुशासन की छाती का लहू पीएगा। इतना होने के बाद भी धर्मराज कहे जाने वाले युधिष्ठिर ने दुबारा जुआ खेला और अपना सारा राज्य (इन्द्रप्रस्थ) हार जाना और बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करना स्वीकार करना पड़ा। जुए का शौक क्या युधिष्ठिर की कमजोरी नहीं थी? इसी कमजोरी का लाभ शकुनी ने उठाया। द्रौपदी के अपमान का बदला लेने और अपना खोया राज्य वापस लेने के लिये ही तो महाभारत का युद्ध हुआ। एक व्यक्ति की कमजोरी क्या-क्या परिणाम नहीं लाती?

ऐतिहासिक दृष्टि से छठी सदी से बारहवीं-तेरहवीं सदी राजपूत युग कहलाता है। अर्थात् सात सौ से आठ सौ वर्षों का इतिहास राजपूतों के इतिहास से भरा पड़ा है। राजपूत कौम वीरता में अद्वितीय रही है। राजपूत मूलत: वैदिक और पौराणिक काल के क्षत्रियों के ही वंशज हैं, लेकिन भारतवर्ष के इतिहास के इस काल-युग में वे क्षत्रिय ये अधिक राजपूत नाम से प्रचलित हुए हैं। उत्तर पश्चिम में कंधार से लेकर पूर्व में इण्डोनेशिया और दक्षिण में कन्याकुमारी तक राजपूतों की वीरता का परचम छाया हुआ था। इस युग में निर्मित इण्डोनेशिया के बोरो बुदुर के मंदिर इसकी गवाही देते हैं। मध्यकालीन इस राजपूत युग में भारतवर्ष में कला-कारीगीरी, शिल्प-स्थापत्य, चित्रकला, नाटक-नृत्य, कला, साहित्य रचनाओं में, महलों और दुर्ग निर्माण में भारत नभ में पूर्णिमा के चन्द्र की तरह पूर्ण प्रकाशित था। प्रजा समृद्ध, सुखी और धर्माभिमुख थी। इस युग का भारत सोने की चिड़िया कहलाता था। राजा प्रजा पालक थे। वे राज्य सत्ता को अपना अधिकार नहीं बल्कि अपना कर्तव्य मानते थे। राजा अपने आपको राज्य का मालिक नहीं बल्कि ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में राज्य का रक्षक मानते थे।

सारे संसार में किसी भी जाति में ऐसे वीर योद्धाओं ने जन्म नहीं लिया, सिवाय राजपूत जाति के कि जो शीश करने पर भी जिनका धड़ कोसों तक और दिनों तक युद्ध करता रहा हो। मरने के बाद भी युद्ध मैदान में दुश्मनों के सिर काटता हुआ दिखाई पड़ा हो। वचन पालन और शरणागत की रक्षा के लिये शक्तिशाली शासक से युद्ध मोल लिया हो। वचन पालन और धर्म रक्षा के लिये गठजोड़ों को काटकर युद्ध करने गया हो और वीरगति को प्राप्त हुआ हो। दुल्हन भी कैसे पीछे रह सकती है, वह भी तो उसी गठजोड़े के साथ सती हुई हो। यह जानते हुए कि उसका सुहाग केवल एक ही रात्रि का रहने वाला है, फिर भी उस वीर की पत्नी बनना स्वीकार किया हो, जो वीर पुरुषधर्म और अपने मान बिन्दुओं की रक्षा के लिये युद्ध करने जा रहा हो। जिसका विवाह हुए कुछ ही दिन हुए हों, समर में जा रहे अपने पति पर पत्नी मोह हावी न हो जाय, इसलिए अपना सिर काटकर सैनाणी के रूप में दे देती हो।

अपने कुल के नकली प्रतीक का मान रखने के लिये जो अपने ही स्वामी से युद्ध करके शहीद होता हो; कुल की सन्नारियों की इज्जत बचाने के लिये जिस जाति के किशोर भी दुश्मनों का संहार करके वीरगति को प्राप्त होते हों; मरने के लिये भी हरावल (अग्रिम पंक्ति) में रहने के अपने अधिकार की रक्षा के लिये जो छाती से किले के तीक्ष्ण कीलों वाले दरवाजे तुड़वाते हों, सिर काटकर किले में पहुँचाते हों; ऐसे वीर रत्नों की जननी-इस राजपूत जाति का पतन कैसे हो सकता है? मगर फिर भी इसका पतन हुआ। क्यों हुआ इस कौम का पतन? क्या कमजोरियाँ थी इस कौम की? बिना किसी कमजोरी के तो किसी का पतन होता नहीं है न। अवश्य कुछ कमजोरियाँ रही हैं।

मूल क्षत्रिय राजाओं के घर जन्मे राजपुत्र कालक्रम में राजपूत नाम से पहचाने जाने लगे। कालक्रम में उनकी कई शाखा (खांप) प्रशाखा बनने लगी। वे विविध शाखा-प्रशाओं में विभाजित होने लगे। इन खांपों के छोटे-बड़े कई राज्य-रियासतें, अस्तित्व में आए। धीरे-धीरे इन अलग-अलग रियासतों में अपनी-अपनी खांपों के लिये उनमें 'अहं' ने प्रवेश कर लिया। युधिष्ठिर का कहना कि 'वयं पंचाधिक शतम्' परिवार या कुल के दुश्मनों के सामने हम पाँच या सौ नहीं बल्कि एक सौ पाँच हैं, भुला दिया गया और पांच-पांच, दस-दस अलग-अलग हो गये। लकड़ियों की गठरी अब टूट गई, बिखर गई। परिणाम, उनका टूटना अपेक्षित था।

आर्यावर्त-भारतवर्ष की सीमा के पार विधर्मी यवन और अधिक शक्तिशाली होते जा रहे थे। अपनी जातीय वीरता के बल पर मिथ्याभिमान के कारण हमारे ये शक्तिशाली शासक लापरवाह बनते रहे। यद्यपि भिन्न-भिन्न होते हुए भी कई सदियों तक उन आततातियों का डटकर सामना किया और भारतीय सीमा के इस पार उन्हें नहीं आने दिया। जिस किसी ने भारत की सीमा को लांघने का प्रयास किया, उन्हें मुँह की खाकर लौट जाना पड़ा। लगभग सात सौ वर्ष की लम्बी अवधि तक बाह्य आक्रमणकारी सीमा पार कर स्थिर होने में असफल रहे। जिस किसी सीमांत राज्य पर विधर्मियों ने आक्रमण किया तो उनका सामना उसी अकेले राज्य ने ही किया। हमारे अन्य किसी राज्य ने उसका सहयोग नहीं किया। विधर्मियों के सामने हम 'एक सौ पांच' नहीं हुए। हमारी यह कमजोरी देखकर आक्रमणकारी धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढाने लगे और भारत पर आक्रमण करने लगे। बिखरी लकड़ियों की तरह हम एक-एक टूटते रहे। आततायियों ने एक-एक करके तोड़ दिया।

एक-एक के रूप में राजाओं ने-राजपूतों ने अनुपम वीरता अवश्य दिखाई लेकिन सामुहिक रूप में संगठित होकर विधर्मियों का सामना नहीं किया। पृथ्वीराज पर जब आक्रमण हुआ तो उस समय के विख्यात योद्धा जयचंद ने कोई गद्दारी नहीं की पर पृथ्वीराज का सहयोग नहीं किया। परिणाम क्या निकला? पराजित होकर क्षमायाचना कर जीवन की भीख मांगने वाला गौरी अन्तिम युद्ध में विजयी हुआ और बार-बार स्वयं को जीवनदान देने वाले पृथ्वीराज की हत्या कर दी। इसके बाद जयचंद को भी युद्ध में मार डाला।

एक समय ऐसा भी आया कि मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंहजी के नेतृत्व में लगभग सभी राजपूत राजाओं की अस्सी हजार की सेना बाबर की सेना के सामने खानवा के मैदान में आ खड़ी हुई। बाबर की सेना हार रही थी परन्तु अफसोस की बात है कि सरहदी की सलाह न मानने पर उसके अहं ने अपनी तीस हजार की सेना के साथ उसे बाबर से मिला दिया। परिणाम? बाबर की विजय और राजपूतों की पराजय। हल्दीघाटी के युद्ध में भी तो महाराणा प्रताप के विरुद्ध अकबर की सेना में अधिकांश राजपूत ही तो थे।

हमारी अद्भुत वीरता, हमारा शौर्य, हमारी शरणागत वत्सलता, हमारा प्रजा वात्सल्य जैसे उत्तम सद्गुणों के उपरान्त भी हमारी महान कमजोरी हमारे 'अहं' के कारण हमें पतन का मुँह देखना पड़ा और पड़ रहा है। तो क्या हम हमारी इस कमजोरी की बात ही

करते रहेंगे या इसको दूर करने का कोई उपाय भी ढूंढेंगे? इस अहं के मर्ज का उपचार क्या है? कौन है इसका वैद्य? कहाँ ढूंढें उस वैद्य को?

बन्धुओं! निराश मत होइये। इसका उपाय है-अहं के बदले जातीय स्वाभिमान और सहयोगी जीवन। इस कमजोरी, इस बीमारी का इलाज करने वाला वैद्य दि. 22 दिसम्बर, 1946 को जन्म ले चुका है। उसका नाम है 'श्री क्षत्रिय युवक संघ' उसके चिकित्सालय हैं इसकी शाखाएँ और इसके शिविर। इसकी दवा की पुड़िया और टिकिया हैं उसके खेल, सहगायन, चर्चा, बौद्धिक आदि। इस दवाई का परहेज है अपने अहं पर चोट कर उसका रूपान्तरण और खुराक है सहयोगी तथा सामुहिक जीवन।

संघ अपने खेल, जैसे-चल रहे बुद्धु, वाह रे बुद्धु, चरण स्पर्श, प्यारी पुसी, मेरी भेड़ खो गई द्वारा अहं को शिथिल करते हुए उसके त्याग की राह बनाता है। भैया तू कहां-मैं यहाँ, सहायता, मैं प्रताप इत्यादि खेलों द्वारा सहयोग की भावना जाग्रत कराता है। संघ हमें चर्चा, सहगीतों और प्रवचनों द्वारा विभिन्न गुणों का ज्ञान करवाता है तथा खेलों और जीवन व्यवहार से इनका आचरण करवाता है। श्री क्षत्रिय युवक संघ सभाएँ बुलाकर, प्रस्ताव पारित करके तालियाँ पीटने की बजाय हमारी कमजोरियों का ज्ञान करवाकर उनके त्याग का व्यवहारिक मार्ग प्रशस्त करता है। सद्गुणों का ज्ञान करवा कर उन्हें आचरण में लाने का अभ्यास करवाता है। वर्तमान समय में हमारे समाज में ऐसी कोई कार्यशाला नहीं है जो हमारी कमजोरियों की ओर ध्यान देकर उन्हें मिटाने और उनके प्रति जागरूक रहना सिखाती हो। जिसका मार्ग सनातन सत्य हो।

लघुकथा

शबरी के राम

– जयरामसिंह गौर

अर्धरात्रि बीत चली, शबरी चिंतन में मग्न थी, कभी पति, कभी स्वयं में, कभी देखती रक्तरंजित हथियारों की ओर, सोचती यह क्रम कब तक चलता रहेगा-कब तक चलता रहेगा, चिंतन का वेग तेज हुआ, संकल्प शक्ति पुष्ट हुई, पैरों में गति दमकी और इसी ऊहा-पोह में सब कुछ छोड़ चल पड़ी शबरी अज्ञात की ओर अपने राम से मिलने।

रात्रि का घोर अंधकार, वर्षा का वेग, बादलों का कतार बांधे गर्जन, बिजली की चमक, हिंसक-पशुओं की कम्पित भयावनी हुंकार उसे रोक नहीं पाये, अथक-पैर बढ़ते ही गये, जिन्हें मतंग-आश्रम की समीपता ने विश्राम दिया। उस समय तक ब्रह्मवेला का उदय हो चुका, मतंग ऋषि की तन्द्रा भंग हुई। देखा! एक सफेद वस्त्राच्छादित नारी, मौन, नतमस्तक आश्रम द्वार पर खड़ी है।

ऋषि-पीड़ा जागी और जागा नारी के प्रति करुणा-बोध। सहसा मुख से निकल पड़ा-बेटी तुम कौन! यहाँ कहाँ! बिन बोले ही शबरी, ऋषि-चरणों में दण्डवत मुद्रा में गिर गई। ऋषि शब्दों से चेतना उभरी, दिशा मिल गई और मिल गया-अपने राम तक पहुँचने का सीधा सरल मार्ग। माया का बंधन समाप्त हुआ। ऋषि-शब्दों की गूंज ही बन गया राम मिलन का संबल। क्षण, घण्टे, दिन, मास, वर्ष बीत चले साधना में राम की। कब प्रातः, कब सन्ध्या, कब रात्रि निकल जाती, इसका आभास ही नहीं रहा।

श्वासों में राम, मानस में राम, हृदय में राम, ऋषि-आश्रम के अणु-अणु में राम, जिधर देखती उधर राम, शबरी में थे राम और राम में थी शबरी तन्मय। ऐसी तन्मयता में ही राम शबरी कुटीर आये। स्नेह की विह्वलता में ही शबरी प्रभु को बेर खिलाये जा रही थी-राम बेर खाये जा रहे थे। बेर भी भाग्यशाली थे। शबरी के बेर राम के बेर हो गये। सुधि न राम को रही न शबरी को। बेरों में शबरी को राम और राम को शबरी दिखाई दे रही थी। बेर ही माया बन द्वय का बोध करा रहे थे, प्रभु कृपा से बंधन टूटा।

''शबरी के राम'' शबरी समक्ष थे-मतंग यह सब देख रहे थे।

हल्दीघाटी रण में तँवर सरदार

– स्वरूपसिंह जिंझनीयाली

रामशाह अथवा रामसिंह तंवर ग्वालियर के राजा विक्रमादित्य का पुत्र तथा राजा मान तँवर का पौत्र था। राजा विक्रम तंवर इब्राहिम लोदी की सहायता करते हुए पानीपत के युद्ध में 1526ई. में काम आये। उस समय रामशाह की उम्र मात्र दस वर्ष से भी कम थी। रामशाह से ग्वालियर छूट गया तथा वे सत्रह वर्ष तक चम्बल के बीहड़ों में रहकर राज्य प्राप्ति का प्रयास करते रहे। 1540ई. में रामशाह ने कन्नोज में शेरशाह सूरी को साथ देकर ग्वालियर हथियाना चाहा परन्तु शेरशाह ने उसके साथ धोखा किया। उसने रामशाह को ग्वालियर न लौटा कर खुद वहाँ का राज्याधीश बना। फिर शेरशाह के वंश के अन्तिम बादशाह आदिलशाह ने ग्वालियर किला दास वंश के सुहेल को दे दिया उस समय रामशाह ने 1558ई. में ग्वालियर पर हमला किया। परन्तु इस युद्ध में अकबर की सेना भी ग्वालियर आ धमकी। तीन दिन के युद्ध में रामशाह को पीछे हटना पड़ा और अकबर ने सुहेल से संधि कर ग्वालियर प्राप्त कर लिया। रामसिंह का ग्वालियर का राज्य प्राप्त करने का अन्तिम सपना भी टूट गया।

अब रामशाह ग्वालियर की आश छोड़कर 1559ई. में मेवाड़ के महाराजा उदयसिंह के पास चित्तौड़ आ गये। महाराणा ने ग्वालियर राजा का उचित स्वागत किया तथा अपनी पुत्री का विवाह रामशाह के पुत्र राजकुमार शालीवाहन के साथ कर उन्हें जागीर प्रदान की।

1567ई. में अकबर की सेना ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। जयमल एवं फत्ता के नेतृत्व में वीर क्षत्रियों ने घमासान युद्ध किया और क्षत्राणियों ने चित्तौड़ का तीसरा एवं अन्तिम जौहर किया। इस युद्ध में भी रामशाह तंवर लड़े थे। जब महाराणा उदयसिंह का अन्तिम संस्कार किया जा रहा था तब उनका छोटा पुत्र जगमाल वहाँ नहीं था। तब रामशाह तंवर एवं पाली के राव मानसिंग सोनगरा ने सलुम्बर राव कृष्णदास चुण्डावत को सचेत व प्रोत्साहित किया था। इनकी सूझबूझ से बाद में जगमाल को गद्दी से हटा दिया गया एवं महाराणा प्रताप का गोगूंदा में राजतिलक किया गया। रामशाह इस वक्त भी वहाँ मौजूद थे एवं नजराना पेश किया था।

1576ई. में विश्व प्रसिद्ध हल्दीघाटी का युद्ध हुआ। अकबर ने अपना शिविर अजमेर में लगाया एवं आमेर के राजा मानसिंह को राणा प्रताप से युद्ध करने को भेजा। अकबर की सेना माण्डलगढ़ होती हुई बनास नदी के किनारे मोलेला गाँव में आकर रुकी। उधर राणा प्रताप गोगुन्दा से चलकर लोसिंग गाँव लाव लश्कर के साथ रुके। 18 जून, 1576ई. को प्रात: दोनों सेनाओं के मध्य खमनोर में घमासान युद्ध हुआ। राणा प्रताप के हरावल के मोर्चों पर हकिम खाँ सूर, झाला मान, रामदास राठौड़, रामशाह तंवर जैसे वीर बहुत बहादुरी से लड़े। बदायूनी, जो अकबर की सेना के साथ था, ने प्रत्यक्ष वर्णन किया कि–अकबर के सैनिक बनास नदी के पार उत्तर में 5 से 6 कोस तक भेड़ों की तरह भाग गये। आगे बदायुनी रामशाह तंवर के बारे में लिखता है–ग्वालियर के प्रसिद्ध राजा मान के पोते रामशाह ने, जो कि हमेशा राणा की हरावल में रहता था, ऐसी वीरता दिखाई कि उसका वर्णन करना लेखनी की शक्ति से बाहर है। कर्नल जेम्स टॉड ने रामशाह के बारे में लिखा है कि उसका पुत्र खाण्डेराव (शालीवाहन) व उसके तीन सौ पचास तंवर सैनिक युद्ध में मारे गये।

हल्दीघाटी के युद्ध में अपना अप्रतिम शौर्य दिखाने वाले योद्धा रामशाह तंवर के लिये प्राय: इतिहास मौन ही रहा है। राजा रामशाह ने अपने तीन वीर पुत्रों शालिवाहन, भवानी एवं प्रताप तंवर के साथ हल्दीघाटी के ऐतिहासिक युद्ध में शूरवीरता दिखाते हुए अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। तंवरों ने अपना प्राण देकर मेवाड़ का ऋण अदा कर दिया। राणा पर कोई आँच न आये इससे पूर्व ही रामशाह ने अपने रक्त की आहुति मेवाड़ धरा को देकर हल्दीघाटी को अमर तीर्थ बना दिया। हल्दीघाटी की खमनोर की रक्त तलाई (खून का तालाब) वीरों की शमशीरों की चमक एवं उनके शोणित से धन्य हो गई।

1624ई. में उदयपुर के महाराणा कर्णसिंह ने तंवर सरदारों की याद में रक्त तलाई पर छतरियाँ बनवाई। जो ग्वालियर के नरेश व उनके पुत्रों के मेवाड़ धरा में रक्तार्पण की गवाह आज भी खड़ी हैं।

विचार-सरिता

(त्रिंशत् लहरी)

– विचारक

शास्त्रों में शब्द को ब्रह्म कहा गया है। शब्द अपने आप में एक शक्ति है, ऊर्जा है। शब्द द्वारा ही अकथनीय का कथन होता है। अवर्णनीय परमात्मा का लक्ष्य करने हेतु शब्द का सहारा लिया जाता है। शब्द उपास्य है। शब्द ही साधक, साध्य और साधना है। अत: शब्द की उपासना करनी चाहिए। ध्यानी लोग प्रणव अक्षर का ध्यान करते हुए मुँह से ओम् शब्द का उच्चारण करते हैं। अत: सबसे पहले शब्द को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिये। जो जितना ज्यादा सुनना पसन्द करता है उसे उतना ही ज्यादा बोध में प्रगाढ़ता की अनुभूति होती है।

सद्गुरु के पास शिष्य जब शब्द लेने जाता है तो सद्गुरु उसकी शब्द के योग्य अधिकारी होने की परीक्षा लेता है। यदि वह शिष्य ब्रह्मज्ञान को धारण करने का उत्तम अधिकारी और जिज्ञासु होता है तो ही उसे शब्द द्वारा उपदेशित किया जाता है। अनाधिकारी शिष्य को दिया हुआ शब्द बंजर भूमि का बीज हो जाता है जिसमें कभी भी फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह ब्रह्मज्ञान तो सिंहनी का दूध है जिसे हर किसी पात्र में नहीं ठहराया जा सकता। सिंहनी के दूध को दोहन करने के लिये स्वर्ण-पात्र की आवश्यकता रहती है, ऐसे ही ब्रह्मज्ञान के महावाक्यों को श्रवण कराने से पूर्व साधक का (शिष्य का) चतुष्ट-साधन सम्पन्न होना जरूरी है। जब तक शिष्य विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षता रूपी चारों साधनों से सम्पन्न नहीं है तो उसके हृदय में श्रोता इन्द्री के माध्यम से सुनाया गया शब्द ठहर नहीं सक्ता और वह निष्फल ही चला जाता है। अत: शिष्य को चाहिये कि वह किसी श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास शब्द ग्रहण करने से पूर्व शब्द सुनने का अधिकारी बनकर जाए ताकि उसे जो अनमोल बीज धारण करना है वह सदैव हमारे हृदय गुहा में बना रहे और अमरफल की प्राप्ति करा सके।

कठोपनिषद में एक आख्यान आता है कि-नचिकेता को जब उनके पिताश्री उद्दालक जी ने क्रोधवश पुत्र को यमराज को देने की बात कही तब अधिकारी शिष्य (पुत्र) ने यही सोचा कि अवश्य पिताजी कोई ऐसा मंगल कार्य मेरे द्वारा करवाना चाहते हैं जो यमराजजी से ही सम्पादित हो सकता है। अत: मुझे मृत्यु के देवता यमराजजी के पास जाना चाहिए। नचिकेता अपने तपोबल से सशरीर यमपुरी पहुँच गए। यमसदन पहुँचने पर नचिकेता को ज्ञात हुआ कि यमराजजी कहीं बाहर गए हुए हैं, अतएव नचिकेता तीन दिनों तक अन्न-जल ग्रहण किये बिना ही यमराज की प्रतीक्षा करता रहा। यमराज जी के लौटने पर उनकी पत्नी ने बताया कि साक्षात् अग्नि ही मानो तेज से प्रज्वलित होकर ब्राह्मण-अतिथि के रूप में आया हुआ ब्राह्मण बालक आपकी प्रतीक्षा में अनशन किये हुए बैठा है। अत: आप स्वयं जलपात्र लेजाकर पाद्य-अर्घ्य आदि से उसे प्रसन्न कीजिये तभी वह शान्त होगा।

यमरामजी ने तुरन्त नचिकेता के पास जाकर पाद्य-अर्घ्य आदि से विधिवत् नचिकेता की पूजा की और उन्हें अपने निवास स्थल पर लेजाकर आसन दिया और बोले- 'हे ब्राह्मण पुत्र मेरे प्रमाद के कारण आप को तीन रात्रि तक बिना अन्न-जल के रहना पड़ा अत: मैं आपसे अति प्रसन्न हूँ और मैं तीन वरदान देता हूँ कि आप जो मांगोगे मैं देने को तैयार हूँ। यह सुनकर नचिकेता ने पहला वर यह माँगा कि मेरे गौतमवंशीय पिता उद्दालक, जो क्रोध के आवेश में मुझे आपके पास भेजकर अब अशान्त और दु:खी हो रहे हैं, मेरे प्रति क्रोधरहित, शान्तचित्त और सर्वथा संतुष्ट हो जायँ तथा आपके द्वारा अनुमति पाकर जब मैं घर जाऊँ, तब वे पीछे की बात को भूलकर मेरे साथ पूर्ववत् बड़े स्नेह से बातचीत करें। तब यमराजजी ने कहा तथास्तु! अर्थात् ऐसा ही हो।

पहला वर मांगने के उपरान्त दूसरे वर हेतु नचिकेता ने यमराजजी से कहा-''हे मृत्युदेव! मैं जानता हूँ कि स्वर्ग में न तो बुढ़ापा घेर सकता है और न मृत्यु ही उनका वरण

कर सकती है तथा वहाँ इच्छा भोग की प्राप्ति होती है पर वहाँ पहुँचने के लिये अग्निविद्या की जानकारी का होना आवश्यक है अत: यज्ञ आदि करते समय किन बातों की जानकारी का होना आवश्यक है, वह यज्ञविधि कैसे की जाती है? इस अग्नि-विद्या की प्राप्ति का वर मुझे दूसरे वर के रूप में प्राप्त हो, ऐसी कृपा करें।''

इस पर यमराजजी ने अग्निविद्या की महत्ता और गोपनीयता बतलाकर स्वर्गलोक की कारणरूपा अग्निविद्या का रहस्य नचिकेता को समझाया। वेदी के निर्माण में कितनी ईंटें रखी जाती हैं तथा उसका आकार कैसा हो आदि समस्त जानकारी प्राप्त करने के बाद यमराज जी से तीसरा वर इस प्रकार मांगा गया-''हे मृत्युदेव! मैं मृत्युरूपी शाश्वत सत्य से कैसे बच सकता हूँ? क्योंकि मृत्युलोक में तो सबकी मृत्यु निश्चित है, तो फिर मुक्ति का साधन क्या है? यह आप भलीभांति समझाइये।''

इस पर यमराजजी ने नचिकेता के इस प्रश्न की निष्ठा जानने हेतु कहा-''नचिकेता! यह आत्मतत्व अत्यन्त सूक्ष्म व नीरस विषय है। इसे समझना सहज नहीं है, अत: तुम इसके बदले कोई दूसरा वर मांग लो।'' इस पर नचिकेता ने कहा कि मेरी समझ में तो इसकी तुलना में दूसरा कोई वर है नहीं। अतएव आप कृपापूर्वक मुझे इसी का उपदेश कीजिये।

इस एक परीक्षा में उत्तीर्ण होता देखकर नचिकेता को प्रलोभन का पाशा फैंका गया। यमराजजी ने कहा-''नचिकेता! तुम बड़े भोले हो, क्या करोगे इस वर को लेकर? तुम ग्रहण करो इन सुख की विशाल सामग्रियों को। मेरे से सौ सौ वर्ष जीने वाले पुत्र-पौत्रादि बड़े परिवार को मांग लो। गौ आदि बहुत से उपयोगी पशु, हाथी, घोड़े, स्वर्णनिर्मित भवन व भूमण्डल के महान साम्राज्य को मांग लो और इन सबको भोगने के लिये जितने वर्षों तक जीने की इच्छा हो, उतने ही वर्षों तक सुखपूर्वक जीते रहो। मैं तुम्हें समस्त भोगों को इच्छानुसार भोगने वाला बनाये देता हूँ।'' इतने पर भी नचिकेता अपने निश्चय पर अटल रहा, तब स्वर्ग के दैवी भागों का प्रलोभन दिया गया।

इस प्रकार एक के बाद एक उत्तम भोगों का प्रलोभन देने पर भी आत्मज्ञान के इच्छुक नचिकेता की निष्ठा टस से मस नहीं हुई और वह बोल पड़ा-''यमराज! जिस आत्मतत्व-सम्बन्धी महान ज्ञान के विषय में लोग यह शंका करते हैं कि मरने के बाद आत्मा का अस्तित्व रहता है या नहीं, उसके सम्बन्ध में निर्णयात्मक जो आपका अनुभूत ज्ञान हो, मुझे कृपा करके उसी का उपदेश कीजिये। मुझे इसके अतिरिक्त अन्य कोई वर स्वीकार्य नहीं है।''

इस प्रकार आत्मज्ञान का उत्तम अधिकारी समझकर यमराज जी ने नचिकेता को तीसरे वर के रूप में आत्मतत्व सम्बन्धी अत्यन्त गूढ़ रहस्य का प्रतिपादन करते हुए नचिकेता को संसार में सुख के दो साधन बताए। 1. श्रेय, 2. प्रेय। श्रेय अर्थात् सदैव के लिये सब प्रकार के दु:खों से सर्वथा छूटकर नित्य आनन्दस्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तम को प्राप्त करने के उपाय पर ही उपदेश किया। परब्रह्म परमात्मतत्व की महिमा बताते हुए उन्होंने कहा-''इस अध्यात्म-विषयक धर्ममय उपदेश को पहले तो अनुभवी महापुरुष के द्वारा अतिशय श्रद्धापूर्वक सुनना चाहिये, सुनकर उसका मनन करना चाहिये। तदनन्तर एकान्त में उस पर विचार करके बुद्धि में उसको स्थिर करना चाहिये। इस प्रकार जब वह आत्मा को तत्व से समझ लेता है; तब आनन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्मात्मैक्य बोध से परिपूर्ण अपने आपको जन्म-मरण से रहित नित्य, शाश्वत और अमरत्व का धनी मानता है।''

उस परमतत्व अनामी को प्रणव अक्षर 'ॐ' से पहचान कराते हुए आगे यमराजजी नचिकेता को इसी अक्षर का उच्चारण व ध्यान करने की बात कहते हैं। आगे कहा गया है कि उस परब्रह्म परमात्मा की अनुभूति के लिये उत्कट इच्छा का होना जरूरी बताया गया है। शास्त्रों को पढ़-सुनकर लच्छेदार भाषण देने वाले व बुद्धि की तर्कशीलता से उस तत्व की अनुभूति नहीं हो सकती। परमात्मा की अनुभूति के लिये बुद्धि व साधन पर

भरोसा न करके जो उनकी कृपा की ही प्रतीक्षा करता रहता है, ऐसे कृपा-निर्भर साधक पर परमात्मा कृपा बरसाते हैं और योगमाया का पर्दा हटाकर उसके सामने अपना स्वरूप प्रकट कर देते हैं।

इस प्रकार सद्गुरु द्वारा उपदेशित शब्द को जो हृदय में धारण करता है वही आगे चलकर उपदेशक बन सकता है। बोलने से पहले हमें बहुत सुनना है, उसे तो नेत्रों से पीना भी है। सुनने के साथ पीना भी सीखें ताकि वह हमारे हृदय प्रदेश में उतरकर अमृत का काम कर सके। वक्ता के नेत्रों पर, मुख पर व उसके हाथों की भाव-भंगिमा पर भी श्रोता की दृष्टि लगी रहनी चाहिए। वक्ता की भाव-भंगिमा में जो शब्द है वह वाणी में नहीं। इसलिए मन को एकाग्र रखते हुए बहुत काल तक सुनें। जिसने जितना ज्यादा सुना है, उसने उतना ही ज्यादा पाया है। सुनाने से पहले इतना सुनें, इतना सुनें कि वह छलकने लग जाय। बोलते समय ध्यान रहे कि हम समय पर बोलें और पूरा बोलें।

बोलते समय ऐसा बोलें कि हमारी वाणी से हमारे घराने की कीर्ति का पता चले। सुनने वाले को पता चलना चाहिये कि इसका घराना बहुत ऊँचा है, इसका सद्गुरु अवश्य कोई पहुँची हुई हस्ती है। जो ज्यादा सुनता है वह उतना ही धीर, वीर और बुद्धिमान होता है। कल्याणकारी अनेक साधनों में महत्त्वपूर्ण साधन श्रवण ही है। वेद कहता है कि मनुष्य को कान मिले ही इसीलिए हैं कि वह भद्र सुने। बालक के जन्म के बाद सबसे पहला शब्द कोई सुनाया जाता है तो वह कान के पास मुँह लगाकर 'ॐ' शब्द का श्रवण कराया जाता है ताकि उसकी मेधा शक्ति जाग्रत हो जाय। ऐसे बालकों को एक बार पढ़ी हुई बात या सुनी हुई बात कभी भी विस्मृत नहीं होती थी। उदाहरण के लिये विवेकानन्द आदि।

एक सन्त का कहना था कि संसार की बातें तो सुनी जाती हैं तथा इतिहास व ब्रह्म का ज्ञान पीया जाता है, ताकि वह भीतर में उतरकर सुनने वाले को कल्याण की अनुभूति करा सके। इसीलिए तो युद्ध के मैदान में गुरुरूप में श्रीकृष्ण ने अपने अधिकारी शिष्य अर्जुन को गीता का ज्ञान सुनाया। उस गुह्यज्ञान को सुनकर अर्जुन का मोह नष्ट हुआ और स्वरूप की स्मृति जागी। जिससे वह राग-द्वेष के द्वन्द्व से मुक्त हुआ और निष्काम भाव से श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार युद्ध में प्रवृत हुआ।

अपने आप में जो जगा हुआ नहीं है उसे ही मोह की निद्रा भ्रमित करती है और अज्ञान के अंधेरे से घिरा रहता है और उसके अहंकार की निवृति होती ही नहीं। अहंकार और संशय के कारण विष्णु भगवान का वाहन होते हुए भी गरूड़जी को काकभुशंडजी की वाणी सुननी पड़ी। सुनने से ही गरूड़जी का संशय टूटा और उन्होंने राम को विष्णु का साक्षात् अवतार माना। प्रत्येक अक्षर आदरणीय है, उसे आदरपूर्वक सुनें। सुनने के बीच में बोलना व उत्तर देने की तत्परता साधक के लिये अच्छा लक्षण नहीं।

जो अच्छा श्रोता है वही अच्छा वक्ता बनता है। इसलिये खूब सुनिये। श्रुति का अर्थ ही यही है कि हम सुनें। पशु, पक्षी बहुत कम बोलते हैं। जहाँ अति आवश्यक होता है, वहाँ वे बोलते हैं वरना मौन रहकर अपना जीवन यापन करते रहते हैं। प्रकृति कितनी शान्त है। पेड़, पौधे, लता, फूल, फल सब शान्त हैं इसीलिए वे सबको आकर्षित करते हैं। धरती पर मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो सुनने से पहले सुनाना चाहता है।

अत: अपने सद्गुरु द्वारा उपदेशित वाणी को सुनना सीखें। उपदेशकाल में गुरु ब्रह्मा रूप होकर हमारे हृदय प्रदेश में सद्विचारों का बीजारोपण करते हैं। उसके बाद भिन्न-भिन्न युक्तियों द्वारा उसी आशय की पुष्टि हेतु विष्णु बनकर शिष्य को दिये गये शब्द का पोषण करते हैं। शिष्य की साधना में जब कभी कोई बाधा आती है तो वही परम दयालु शिव रूप में उन बाधाओं को दूर करते हैं और हमें कल्याणकारी बनाते हैं। इसलिये आचार्यों की बात को खूब ध्यानपूर्वक सुनते रहना चाहिये। इस प्रकार के निष्ठापूर्वक एकाग्रचित होकर सुनने वाले समस्त श्रोताओं का आदरपूर्वक अभिनन्दन करता हूँ। ***(क्रमश:)***

हाड़ा वंश बून्दी

– संकलनकर्ता : विरेन्द्रसिंह तलावदा

बून्दी का इतिहास जानने से पहले, यहाँ के शासक हाड़ाओं का इतिहास जानना बहुत जरूरी है। क्षत्रियों में चौहान वंश बहुत प्रसिद्ध है। पृथ्वीराज चौहान भारत के सम्राट थे। विशलदेव चौहान ने हिमाचल से विंध्याचल तक शासन किया था। हम्मीरदेव चौहान ने अलाउद्दीन खिलजी से अप्रतिम वीरता के साथ युद्ध किया था। एक समय राजपूताने के सवा लाख ग्रामों पर चौहान वंश का शासन था। राज्य विस्तार, वीरता, नीतिपरायणता, कलाप्रेम और विद्याभिरुचि की दृष्टि से कितने ही चौहान नरेश भारतीय इतिहास के पृष्ठों के अलंकार हैं।

मान्यतानुसार आबू पर्वत पर राक्षसों के उपद्रव का संहार करने के लिये महर्षि वशिष्ठ ने अग्नि कुण्ड बनाकर ब्रह्मा की स्तुति की और वेद मंत्रों का उच्चारण करके आहुति दी। उससे क्षत्रिय योद्धा चहुआण उत्पन्न हुआ। इसी से तीन और योद्धा प्रतिहार, चालुक्य, परमार उत्पन्न हुये। इसलिए इनको अग्निवंशी कहते हैं।

बिजौलिया के शिलालेखों में उन आठ राजाओं की नामावली दी गई है जो अहिछत्र अर्थात् नागौर में राज करते थे। इनके राज्य में सवा लाख ग्राम सम्मिलित थे और अजमेर उसके अन्तर्गत था। इस प्रदेश को पौराणिक काल में सपादलक्ष कहते थे। फिर यह सांभर या साकम्बरी कहलाने लगा। सांभर प्रदेश की राजधानी अहिछत्र नामक नगरी थी जो वर्तमान में नागौर है। चौहानों ने अपना राज्य 728 ई. के लगभग स्थापित किया था।

सन् 943 ई. में एक अलग राज्य स्थापित करके नाडोल (मारवाड़) में अपनी राजधानी स्थापित की। पृथ्वीराज प्रथम के पुत्र अजयदेव ने सांभर को छोड़कर अपनी राजधानी अजमेर बनाया। प्रबल प्रतापी राजा बीसलदेव हुये। इन्होंने हिमाचल से विन्ध्याचल तक संपूर्ण देश पर शासन किया।

इसी वंश में सोमेश्वर के बाद उनके पुत्र पृथ्वीराज तृतीय गद्दी पर बैठे। जो मोहम्मद गौरी से लड़ते हुये शहीद हुए। इसके बाद चौहानों के हाथ से भारत वर्ष का राज्य जाता रहा फिर भी उनकी शाखाएँ जहाँ-तहाँ छोटे-छोटे प्रदेशों पर राज्य करती रही। चौहान क्षत्रिय लाखों की संख्या में इस समय भारतवर्ष में मिलते हैं।

चौहान वंशी राजपूतों की 24 शाखाएँ हैं-चौहान, हाड़ा, खींची, सोनगरा, देवड़ा, पाविया, सांचोरा, गोयलवाल, भदौरिया, निर्वाण, मालानी, पूर्बिया, सूरा, मादड़ेचा, सक्रेचा, भूरेचा, वालेचा, तस्सेरा, चाचेरा, रोसियाँ, चादू, निकुम्भ, भावर, बंकट, बगड़ावत, बागड़ियां, राजकुमार, सिकरवार।

जब नाडोल के चौहान कुतुबुद्दीन से हारकर भीनमाल गये उसी समय उस वंश के माणिकराव द्वितीय नामक वीर ने मेवाड़ के दक्षिण-पूर्व भाग भैंसरोड़गढ़ पर अधिकार कर लिया और अपना राज्य स्थापित किया और बम्बावदा को अपनी राजधानी बनाया। यह गढ़ जोगणियाँ माता (जोगणियाँ माता हाड़ाओं (चौहान) की कुलदेवी आशापुरा माता ही है।) के पास बेगूं रोड़ पर खण्डहर के रूप में स्थित है। बम्बावदा के बालाजी का स्थान, लक्ष्मीनारायण जी के मन्दिर के अवशेष वर्तमान में स्थित हैं। माणिकराव से छठी पीढ़ी में हरराज या हाड़ोराव नामक एक बड़ा वीर उत्पन्न हुआ, जिसके वंशज हाड़ा कहलाने लगे।

हरराज या रावहाड़ा के पीछे तक हाड़ा राजपूत बम्बावदे में राज करते रहे, इस वंश में बंग देव का पुत्र कंवर देवीसिंह हाड़ा वीर और साहसी हुआ उसने हाड़ा राज्य का विस्तार किया और बून्दी (बून्दानाल क्षेत्र) नगर को दूसरी राजधानी बनाया। बून्दी के मुखिया जैता मीणा को युद्ध में हरा कर देवसिंह ने बून्दी में प्रवेश किया और आपाढ़ कृष्णा नवमीं सम्वत् 1298 (ई.सं. 1241) को

बून्दी में अपना अधिकार स्थापित किया। ई. सं. 1275 में अलाउद्दीन ने बम्बावदे पर चढ़ाई की, उस समय बून्दी से समरसिंह, हरराज की सहायता के लिये चढ़ आया। समरसिंह और हरराजसिंह दोनों लड़ाई में मारे गये। फिर समरसिंह का पुत्र नरपाल (नापा) बून्दी का और हरराज का पुत्र हालू बम्बावदे का स्वामी हुआ।

बून्दी राज्य की स्थापना के बाद भी बम्बावदा हाड़ाओं के अधिकार में रहा, महाराव देवसिंह ने बम्बावदा राज्य अपने ज्येष्ठ राजकुमार हरराज को तथा बून्दी राज्य अपने दूसरे पुत्र समरसिंह को संभलाया। बम्बावदा में हाड़ाओं का राज्य लम्बे समय तक रहा। बेगूं में मेवाड़ के करद सामन्त बन गये।

राव देवसिंह की राज काज की अभिलाषा समाप्त हो गयी, पुत्रों को राज काज सौंपकर वे सन्यास लेकर अमरथूना आ गए। मृत्यु पर्यन्त वहीं रहे ना वे कभी बून्दी गए, ना ही बम्बावदा क्योंकि पुत्र को अधिष्ठित करने पर राजपूत राजा उस राजधानी में नहीं रहते क्योंकि उनका प्रजा रूप में उस राज्य में रहना न्यायसंगत भी नहीं रहता। वर्तमान में बून्दी के अन्तिम महाराव बहादुरसिंह जी थे, इनके एक पुत्र नि:संतान राजकुमार रणजीतसिंह थे, जिनका स्वर्गवास 2010 को हो गया एवं राजकुमारी महेन्द्र कँवर का विवाह अलवर के राजपरिवार में हुआ जिनके पुत्र भंवर जितेन्द्रसिंह हैं।

आज जहाँ कोटा नगर स्थित है उसके समीप ही मध्ययुग में अकेलगढ़ था, जहाँ भील सरदार कोटिया का आसपास के क्षेत्र पर प्रभाव था। बून्दी के हाड़ा नरेश देवसिंह के पौत्र जैतसी का विवाह कैथून के तंवर सरदार की पुत्री से हुआ था। अकेलगढ़ कैथून और बून्दी के बीच स्थित था। जैतसी महत्त्वाकांक्षी राजकुमार था। उसने अपने पिता बून्दी नरेश समरसिंह और अपने ससुर कैथून के तंवर सरदार की स्थिति का लाभ उठाकर अकेलगढ़ के भीलों से युद्ध जीत कर 1274 ई. से ही कोटा परगना बून्दी के राजकुमार की जागीर के रूप में रहने लगा। बून्दी से अलग 1631 ई. में स्वतंत्र रूप से राव माधोसिंह कोटा के शासक बने। वर्तमान में कोटा के महाराव ब्रजराजसिंह जी हैं, महाराज कुंवर इज्यराजसिंह जी हैं और भंवर श्री जयदेवसिंह हैं।

कोटरियात क्षेत्र :- इन्द्रगढ़, खातौली, बलवन, गैंता, करवाड़, पीपल्दा, पूसोद और आँतरदा थे। ये स्वतंत्र राज्य थे पर भटवाड़ा में (सम्वत् 1817) जयपुर एवं कोटा के बीच युद्ध हुआ था जिसमें कोटा विजयी हुआ और सारी रियासतें कोटा के साथ आ गई।

बून्दी दुर्ग (तारागढ़) :- बून्दी नगर के उत्तर में 1426 फीट ऊँचे पहाड़ी शीर्ष पर, सन् 1354 में, इस क्षेत्र को चित्तौड़ और मांडू के शासकों के हमलों से बचाने के लिये बून्दी नरेश राव वरसिंह ने बून्दी दुर्ग का निर्माण करवाया। जहाँ बून्दी नगर रात्रि की रोशनी में तारे जमीन पर होने का आभास कराता है, वहीं बून्दी दुर्ग रात में आकाश में तारे के जैसा दिखलाई पड़ता है इसीलिए बून्दी दुर्ग का एक नाम तारागढ़ भी है। इस दुर्ग में वर्तमान में मौजूदा राज प्रसाद, हवेलियाँ, मन्दिर, द्वार, छतरियाँ और बावड़ियाँ इसकी भव्यता में चार चाँद लगाते हैं। इस दुर्ग के अधिकतर सपाट भाग में दो द्वार (पश्चिमी), जीव रखा महल, भीम बुर्ज, कलात्मक छतरियाँ और चार विशाल पक्के जलाशय स्थित हैं। राव सुरजन के पुत्र राव दूदा द्वारा बनवाया दूदा महल इस दुर्ग का सबसे पुराना निर्माण है। दूदा, महल से दुर्ग के द्वार तक की सड़क महाराव रामसिंह ने बनवायी थी। इन्हीं के काल में दुर्ग में जीव रखा (जीव रक्षा का अपभ्रंश) महल बना था। इस एक मंजिला महल में हाड़ा राजाओं के खजाना होने की बात कही जाती है। जीव रखा महल यहाँ कोट के अंदर बने सुरक्षित महल थे। इस महल के समीप ही बारूद खाना है जहाँ तोपों और बंदूकों के लिये बारूद सुरक्षित रखा जाता था। दुर्ग के चारों जलाशय सैकड़ों सीढ़ी युक्त पत्थर की चिनाई के बने हैं और सदैव जल से परिपूरित रहते हैं। दुर्ग में इस प्रकार के अज्ञात स्रोत वाले जलाशयों का होना किसी अजूबे से कम नहीं। किलाधारी मंदिर के आगे के टांके को जीवन टांका कहा

जाता है। मंगल, गजद्वार और चाउण्ड द्वार के ऊपर बड़े भंडार बनवाये। ऊपर किले मार्ग में बंगला और गौशाला, जो आत्माराज जी का बंगला कहलाता है, को भी राव रामसिंह ही ने बनवाया था। फीलखाने के समीप ही विशेष बनावट वाला भीम बुर्ज स्थित है। राव छत्रसाल के दूसरे पुत्र भीमसिंह के नाम पर इस बुर्ज का नाम भीम बुर्ज पड़ा। दुर्ग में स्थित भीम बुर्ज के बीजक के अनुसार ये शानदार बुर्ज महाराव विष्णु सिंह के समय में बना। इसकी पहाड़ी सतह से ऊँचाई 47.2 फीट और परिधि 405 फीट है। इस पर तोपें चढ़ाने का मार्ग बना है। भीम बुर्ज पर राव सुरजन सिंह द्वारा रणथम्भौर से लायी धूलधाणी और कटक बीजल तोपें रखी थी। जिन्हें नीचे उतार कर राव छत्रसाल ने बून्दी के हमलावरों के दाँत खट्टे कर दिये थे। बाद में राव छत्रसाल के समाप्त हो जाने पर ये तोपें वहीं रह गईं। राव छत्रसाल के समय यह दुर्ग केवल तोपें रखने के लायक था। इसी के पास किलाधारी मंदिर से सटा मुख्य तोप खाना था जो 30 फीट चौड़ा 78 फीट लम्बा और छः दरों में विभाजित है। पहले सभी दरों में तोपें थी। अब यहाँ केवल दो तोपें ही बची हैं। इनमें से एक महाबल्ला तोप भीम बुर्ज पर रखी है। इस तोप से जुड़ी रोचक बातें बून्दी के जनमानस में प्रचलित हैं। इस प्रकार की तोपें दक्षिण में बीजापुर और अहमदनगर के किलों में भी थी। भीम बुर्ज सामरिक उपयोग हेतु एक भव्य निर्माण है। जहाँ इसका एक रास्ता सपाट चढ़ाई युक्त है, वहीं बुर्ज में एक 100 मीटर गहरा कुँआ है। अन्दर जाने के लिये इस सीढ़ियों से युक्त कुंए में कभी बारूद और हथियार रखे जाते थे। भीम बुर्ज से नगर के चारों ओर का विहंगम दृश्य दिखलाई पड़ता है। भीम बुर्ज के पास बनी एक शानदार 20 खम्भों के आधार पर बनी भव्य छतरी को राव अनिरुद्ध सिंह के धाबाई देवा ने सं. 1742 में बनवाया था। इस छतरी में सरस्वती, ब्रह्मा, भैरव, विष्णु और इन्द्र आदि देवताओं की प्रतिमायें बनी हैं। दुर्ग में बनी यह छतरी भी भीम बुर्ज की तरह आज भी अच्छी हालत में है।

बून्दी के महल (गढ़ पैलेस) :- बून्दी नगर के चार द्वारों में पाटन पटेल (पूर्व), भैरव पोल (पश्चिम), शुकुलवारी (उत्तर) और चौगान (दक्षिण) हैं। चौगान बून्दी नगर का सबसे अधिक चहल-पहल और रौनक वाला बाजार है। यहीं से बूंन्दी महलों को जाने का मार्ग चौगान द्वार में प्रवेश कर, बाजार मार्ग में स्थित दुकानों, हवेलियों, पुराने भवनों और मंदिरों से होता बून्दी महलों के सामने नाहर के चौहट्टे पर पहुँचता है। गढ़ में प्रवेश के लिये हजारी पोल, हथिया पोल और गणेश पोल आदि द्वार हैं। नाहर के चौहट्टे पर हैमगौरव घोड़े और शिव प्रसाद हाथी की प्रतिमायें स्थापित हैं। कई दंत कथाओं से जुड़े इस अद्भुत हाथी को बादशाह शाहजहाँ ने राव राजा रतनसिंह को दिया था। यह हाथी सूंड में तलवार पकड़ कर रणक्षेत्र में दुश्मन से लड़ता था। आगे भव्य हथियापोल पर सूंड उठाये दो विशालकाय प्रस्तर हाथियों का बनाया तोरण है। हथियापोल के बाद बड़ा चौक और अस्तबल है। यहाँ से एक मार्ग चित्रशाला की ओर चला गया है और दूसरा मार्ग बून्दी के महलों में चला गया है। बून्दी का राजमहल महाराव बलवंतसिंह ने बनवाया था। शहरपनाह राव बुद्धसिंह और परकोटे फौजदार दलेलसिंह ने बनवाये थे।

महलों में प्रवेश के बाद पहला स्थान रतन दौलत आता है। इस शाही अदालत को महाराव रतनसिंह ने बनवाया था। दीवाने आम पुकारे जाने वाले इस स्थान में संगमरमर का सिंहासन भी मुख्य आकर्षण का केन्द्र है। दीवाने आम के चौक में पानी में, बड़े बर्तन में, कांसे का छेददार कटौरा है। काल मापक यंत्र यह कटोरा एक घण्टे में पूरा पानी में डूबता है। यहीं पर हर आधा घण्टे में बजने वाली जल घड़ी है। रतन दौलत के अलावा महल में छत्र महल, अनिरुद्ध महल, फूल महल, बादल महल और उम्मेद महल आदि दर्शनीय स्थल हैं। छत्र महल की चित्रशाला में श्री जी (उम्मेदसिंह) की स्मृति में कटहारा लगाया गया जिसकी आज भी पूजा की जाती है। इस छत्र महल को महाराव शत्रुसाल ने बनवाया था। यहाँ की

चित्रकारी, चित्रशाला से भी सुन्दर और दर्शनीय है। छत्र महल की चित्रकारी के साथ-साथ यहाँ के हाथी दाँत के बारीक काम वाले दरवाजे, ऊपर बासनी के संगमरमर के विशाल स्तम्भ, काँच का काम और छतरियाँ अधिक सुन्दर और अद्वितीय हैं। राजा अनिरुद्ध ने यहाँ अनिरुद्ध महल बनवाया, ये महल बाद में जनाना महल कहलाये।

बून्दी के ये राजमहल राजपूती स्थापत्य कला का शानदार निर्माण है। इन्हें देखते ही पर्यटक आवाक रह जाते हैं। कर्नल टॉड ने इन राजा महलों को राजपूताने में सर्वश्रेष्ठ बताया था। इन अद्भुत, सम्मोहित होने वाले महलों को देखकर बून्दी भ्रमण को आये प्रसिद्ध जंगल बुक के लेखक रुड़यार्ड किपलिंग ने विस्मित होकर कहा था- ***''ये महल मानवों द्वारा निर्मित नहीं, इन्हें अवश्य ही प्रेतों ने बनाया है।''***

चित्रशाला :- राज महलों में स्थित बून्दी की प्रसिद्ध चित्रशाला ने कलाधाम बनकर विश्व में बून्दी का नाम रोशन किया है। चित्रशाला जाने का मार्ग अलग है। इसके समीप एक गुप्त सुरंग भी है। उम्मेदसिंह के समय बून्दी का कला-वैभव शिखर पर था। बून्दी शैली के चित्रों में पशुपक्षी की बहुतायता थी। चित्रशाला में वर्षा में नाचता हुआ मोर बून्दी की चित्रकारी में बेजोड़ रचना है। ऐसी सुंदरतम चित्रकारी भारत में अन्यत्र नहीं है। यहीं पर श्रीकृष्ण की रासलीला का चित्रण भी मंत्र मुग्ध करने वाला है। इसके साथ-साथ रागिनी चित्र, भाव चित्र, नरेशों के चित्र, शिकारों, सवारियों के चित्र, भगवत पुराण चित्र, कृष्ण लीला चित्र, बारहमासा चित्र, अंत: पुर के चित्र आदि की रंग योजना, रेखांकन चित्रण अद्भुत और दिलकश है। दशहरे की सवारी में हजारों आकृतियों का बारीक चित्रण विस्मयकारी है। छत में सुनहरी और लाल रंगों के बेल बूंटे मनमोहक हैं। रात्रि के चित्र, चन्द्रमा, तारे, वनस्पति का सौंदर्य और अनुरूप चित्र अनूठे बन पड़े हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इस शैली का जन्म राव सुरजन के समय (सन् 1554-85) में माना गया है। बून्दी चित्रकारी अपनी विशिष्ट शैली के कारण राजस्थानी चित्र शैलियों में श्रेष्ठ मानी गयी है। चित्रशाला में लगे दो विशेष शीशों में अब एक ही बचा है। इस शीशे में चित्रशाला का विहंगम दृश्य दिखलाई पड़ता है जब कि चोरी हो गये दूसरे शीशे में सब प्रतिबिम्ब उल्टे दिखलाई पड़ते थे।

राजस्थान के अन्य नगरों की अपेक्षा बून्दी में बावड़ियों व कुण्डों की संख्या आश्चर्यजनक रूप से अधिक है। इनमें से अधिकांश जीर्ण-शीर्ण हालात में, कुछ क्षतिग्रस्त और कुछ बेहतर हालत में हैं। यहाँ की मुख्य बावड़ियाँ इस प्रकार हैं -

रानी जी की बावड़ी :- सैकड़ों कलात्मक और साधारण बावड़ियों वाले इस नगर को इसीलिये ''बावड़ियों का नगर (*City of Stepwell*)'' के नाम से भी पुकारा जाता है। वैद्यनाथ महादेव के मार्ग में स्थित रानी जी की बावड़ी इस नाम की सार्थकता का श्रेष्ठतम उदाहरण है। एशिया में अद्वितीय यह बावड़ी धर्म, कला एवं संस्कृति के उत्थान की उत्कृष्टता और बून्दी राज्य की बावड़ियों के अद्भुत और समुन्नत होने का बेजोड़ नमूना है। इस बावड़ी के भीतर की बारीक कटाई और नक्काशी बेहद शानदार है। इस पश्चिम मुखी बावड़ी को बून्दी नरेश अनिरुद्ध सिंह की रानी नाथावत ने बनवाया था। यहाँ पर गंगोज के समय गंगा जी की चरियों को भरने का पवित्र उत्सव भी मनाया जाता है क्योंकि इस 46 मीटर गहरी बावड़ी के जल को गंगा जल की एक धारा माना जाता है।

बून्दी की सीमा उत्तर में जयपुर और टोंक का राज्य, दक्षिण पूर्व में चम्बल नदी जो कोटा से अलग करती है, पश्चिम में मेवाड़ है। इस राज्य में 839 गाँव थे। बून्दी से तीन किलोमीटर दूर सरस्वती का खेड़ा में बाणगंगा और चन्द्रभागा की जल धाराओं का संगम है। सरस्वती यहाँ स्वयं भूमि से उत्पन्न होने के कारण बून्दी को 'छोटी काशी' भी कहा जाता है।

चहुआनों की चौबीस शाखाओं में एक शाखा हाड़ा है तथा बून्दी एवं कोटा का भू-भाग हाडौती कहलाता है।

हाडाओं के कुछ वीर-वीरांगनाओं का इतिहास बताना जरूरी है -

महाराणी कर्मवती हाड़ी :– राणा सांगा का एक विवाह हाड़ा राव नर्बद की पुत्री करमेती (कर्मवती) से हुआ। इसके दो पुत्र विक्रमादित्य और उदयसिंह हुए। चित्तौड़गढ़ दुर्ग में महाराणी कर्मावती (करुणावती) ने विक्रम संवत् 1592 चैत्र शुक्ला चौथ सोमवार 8 मार्च, 1535 ई. को तेईस हजार क्षत्राणियों के साथ अग्नि प्रवेश (जौहर) किया।

कुम्भा हाड़ा वैरसी का बलिदान :– महाराणा हम्मीर की जीवितदशा में कुंवर खेतल (क्षेत्रसिंह) हाड़ा लालसिंह (गेणोली का जागीरदार) के हाथ मारा गया। महाराणा लाखा ने गद्दी पर बैठते ही प्रतिज्ञा की कि बून्दी को जीतना ही है, क्योंकि गेणोली वालों की बून्दी ने मदद की। महाराणा लक्षसिंह (लाखा) ई. सन् 1382 में गद्दीनशीन हुए। महाराणा लाखा ने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक बून्दी को नहीं जीत लूंगा तब तक भोजन न करूंगा। इस पर सामन्तों ने निवेदन किया यह बात कैसे हो सकती है कि बून्दी शीघ्र जीती जा सके, वह 60 कोस दूर है। तब सामन्तों ने युक्ति निकाली की अभी नकली मिट्टी की बून्दी बनाई जाए उसमें थोड़े से हाड़ा राजपूत रखकर उसे जीत लिया जाये।

उस समय हाड़ा कुम्भा जो हालू (बम्बावदे वाले) का दूसरा पुत्र था। उसको बनावटी बून्दी में रहने को तैयार किया, उसे समझा दिया कि जब महाराणा चढ़कार आवें, तब तुम शस्त्र छोड़ देना, इसके उत्तर में हाड़ा कुम्भा ने कहा कि मैं हाड़ा हूँ, अतएव बून्दी की रक्षा में त्रुटि न करूंगा। इस कथन को लोगों ने हँसी समझा और उसको थोड़े से लड़ाई के सामान के साथ नकली बून्दी में रख दिया। जब महाराणा सेना सहित पहुँचे तो सेनापति से हाड़ा कुम्भा ने कहा कि राणा से जाकर कह दो कि इस नकली दुर्ग को भी सरलता से नहीं जीत पायेंगे। जब तक हमारे शरीर में प्राण हैं, तब तक हम हाड़ा जाति पर कलंक नहीं लगने देंगे। तब महाराणा ने वहीं से उच्च स्वर में कहा–कुम्भा जी! मैं तुम्हारी वीरता और मातृभूमि के प्रेम से बहुत प्रसन्न हूँ और पाँच घोड़ों की जागीर देता हूँ। तुम शीघ्र बाहर निकल आओ और मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लेने दो। कुम्भा का उत्ता था,–''यदि कोई दूसरा अवसर होता तो अन्नदाता की आज्ञा को सिर पर उठाता पर इस समय विवश हूँ।''

''तुम्हें मालूम है, यह मेरी प्रतिज्ञा का प्रश्न है।''
''अन्नदाता! यह हाड़ों की प्रतिज्ञा का भी प्रश्न है।''

''पर यह तो नकली बून्दी है। मैं जब असली बून्दी विजय करने आऊँ तब देखूंगा तुम्हारी प्रतिज्ञा।''
''अन्नदाता! जो नकली बून्दी के लिये नहीं मर सकता, वह असली बून्दी के लिये भी नहीं मर सकता। अन्नदाता जब असली बून्दी विजय करने पधारेंगे तब वहाँ अपनी प्रतिज्ञा रखने वाले और कई हाड़ा मिल जाएंगे।''

''कुम्भा जी तुम नमक हरामी कर रहे हो।''

''अन्नदाता का नमक खाया है, इसलिए अन्नदाता इस सिर के मालिक हैं, इज्जत के नहीं। यह प्रश्न केवल मेरी इज्जत का ही नहीं, हाड़ा वंश की इज्जत का है, इसलिए अन्नदाता मुझे क्षमा करें।''

चित्तौड़ की बड़ी सेना के सामने हाड़ा कुम्भा अपने पराक्रम और विशेष का प्रदर्शन करते हुए अपने दल बल सहित वीरगति को प्राप्त हुए। जिसमें नकली दुर्ग विजय को अपने मान सम्मान से जोड़ते हुए वीरोचित ढंग से अपने प्राणों का बलिदान किया।

हाड़ी राणी सलह कुँवर (इन्द्रकुंवर) ई.सं. 1660 की घटना :– बून्दी नरेश भावसिंह के वंशज भूपतसिंह के पुत्र संग्रामसिंह के घर सलह कंवर (इंन्द्रकंवर) हाड़ी का जन्म हुआ। जिनका सलुम्बर रावत रतनसिंह से विवाह हुआ। सलुम्बर के रावत युद्ध में जाने के लिये बख्तर पहन कर घोड़े की पीठ पर चढ़ने को अति उत्साह से अपने महलों से निकल कर आँगन में आये तो उन्हें अपनी नवविवाहित जीवन संगीनी का स्मरण आना स्वभाविक था। तब रावत रतनसिंह ने कहा कि हाड़ी जी को कहना कि सैनाणी भिजवायें। हाड़ी राणी ने जब यह बात सुनी तो यह समझते देर नहीं लगी कि उसके प्रेम के कारण जो मोह उसके पति के हृदय में वैर

रूप हो गया है, वह कर्तव्य से विमुख कर देगा इसलिए मोह की रस्सी काटना अत्यन्त आवश्यक है। हाड़ी राणी ने तुरन्त अपना मस्तक काटकर थाल में रख दिया। सैनाणी देखकर रतनसिंह स्वयं भावुक हो उठे। सैनाणी को गले में पहनकर युद्ध के लिये प्रस्थान कर गया। दुनिया में ऐसे अनूठे बलिदान की कोई दूसरी मिसाल नहीं है, जो हाड़ाओं के शौर्यपूर्ण और गौरवशाली अध्याय का एक सुनहरा पन्ना बन गया।

जिस घराने में छोटे से बालक को मातृभूमि के आगे मृत्यु को तुच्छ समझना सिखाया जाये वहाँ नि:सन्देह वीर पुरुष ही पैदा होंगे। इसी भावना के कारण हाड़ा सैनिक मध्ययुग में श्रेष्ठतम वीर माने गये। हाड़ाओं में सामान्यता एक बात निश्चित तौर पर पाई गई कि उनका दृढ़ निश्चय होता था कि युद्ध भूमि में कायरों कि तरह किसी भी प्रकार भागना नहीं, विजयी होकर वापस लौटना या युद्ध भूमि में वीरगति को प्राप्त करना। इसलिए हाड़ाओं की इस दृढ़ निश्चय भावना के कारण देशी भाषा में कहावत बन गई कि –

गाडा टळै पण हाड़ा न टळै।

अर्थात् हाड़ा युद्ध भूमि में अपना पैर जमाने के बाद पीछे नहीं हट सकता है।

मेवाड़ से बूंदी के मैत्री संबंध प्रारम्भ से ही रहे थे तथा अनेकों बार विवाह सम्बन्ध के माध्यम से वे एक दूसरे के सगे-सम्बन्धी रहे, कभी-कभी कुछ मन मुटाव के भी कारण आते रहे, लेकिन अधिकांश समय मधुर संबंध बने रहे।

फार्म-4 (नियम-8)

1. प्रकाशन स्थान	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
2. प्रकाशन अवधि	:	मासिक
3. मुद्रक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
नागरिकता	:	भारतीय
क्या विदेशी हैं	:	नहीं
पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
4. प्रकाशक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
नागरिकता	:	भारतीय
क्या विदेशी हैं	:	नहीं
पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
5. सम्पादक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
नागरिकता	:	भारतीय
क्या विदेशी हैं	:	नहीं
पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार व हिस्सेदार हों।	:	पूर्ण स्वामित्व-श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर

मैं एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

1-4-2018 **लक्ष्मणसिंह**

प्रकाशक

उद्देश्य के अनुकूल प्रार्थना सफल हो जाती है

– जैसू खानपुर

प्रार्थना प्रभु बनकर ही की जा सकती है। भिखारी बनकर नहीं। प्रभु बनकर हम प्रभु की पूजा कर सकते हैं। वैदिक साहित्य में उल्लेखित है 'देवो भूत्वा जयेत' देवता होकर ही देवता की पूजा करो। प्रभु नहीं होता वह प्रभु की पूजा नहीं कर सकता।

सिद्धि भी प्रभु से प्राप्त होती है। लेकिन सिद्धि मांगने से नहीं मिलती। सिद्धि पाने के लिये स्वयं को सिद्ध बनना पड़ता है। जो व्यक्ति चन्द्रमा जैसी निर्मलता, सूर्य जैसी तेजस्विता और सागर जैसी गंभीरता को प्राप्त नहीं करता उसे सिद्धि कभी प्राप्त नहीं होती है। सिद्धि उसे मिलती है जो सिद्धमय बन जाता है। साधना का महत्त्वपूर्ण सूत्र है तन्मयता अर्थात मग्न हो जाना। उद्देश्य के अनुकूल बन जाना। जो स्वयं प्रभु नहीं बन सकता वह प्रभु की प्रार्थना कैसे करेगा? यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह प्रार्थना भिखारी की प्रार्थना होगी।

प्रार्थना आत्मा की शक्ति है और वह तभी सफल होगी जब प्रार्थना करने वाला प्रभुमय हो जाता है। जैन धर्म में भक्तामर स्तोत्र की बड़ी महिमा है। श्री माल चेरीटेबल ट्रस्ट के सहयोग से नवीन शाह के निर्देशन में बने भक्तामर स्तोत्र में 44 श्लोक हैं और इनमें से दसवें श्लोक में आया है कि,

'नात्यद्भुतं भुवनभूषणभूतनाथ,
भुतैर्गुणणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति।

अर्थात् जो उदारचित्त स्वामी होता है, अपने आश्रित को अपने समान बना दे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है, अन्यथा उस स्वामी से लाभ ही क्या जो अपने सेवक को अपने समान न बना दे। यदि कोई भी अपने ईष्टदेव को सामने रखते हुए भक्तामर स्तोत्र का श्रवण करता है तो जीवन में नया संचार होगा।

भगवान वही है जो भक्त को भी भगवान बना दे। भगवान और भक्त का अन्तर मिटा दे। प्रार्थना और प्रभु का जो सम्बन्ध है वह यह है कि, प्रभुमय बनने के बाद व्यक्ति में स्वयं प्रभुता प्रकट होने लग जाती है।

प्रार्थना का सूत्र यही है कि, जब तक तन्मयता नहीं आती तब तक प्रभु से कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। पुरुषार्थ की पराकाष्ठा करता है और प्रभुमय बनने की शक्ति को जगाता है उनकी प्रार्थना सफल हो जाती है। अन्यथा निर्बल बनकर जीवन भर प्रार्थना करते रहो कुछ नहीं होने वाला है।

शास्त्रों में लिखा है कि, प्रभु की पूजा और प्रार्थना से भी अच्छा है प्रभु की आज्ञा का पालन करना। एक पुत्र अपने पिता को नमस्कार करता है और आज्ञा का पालन नहीं करता वह पिता को कैसे प्रिय हो सकता है। पिता को वह पुत्र अच्छा लगता है जो आज्ञा का पालन करता है। अनुशासन में रहता है। जो प्रभु के अनुशासन में चलता है, आज्ञा का पालन करता है वही प्रभु की प्रार्थना करने का अधिकारी हो सकता है। जो प्रभु के आदेशों को नहीं मानता, उसके विपरीत आचरण करता है वह प्रार्थना करने का अधिकारी नहीं हो सकता। प्रभु का आदेश है पवित्र रहो किन्तु आदमी विचारों से गंदा रहता है, प्रभु कहता है ईमानदार रहो लेकिन बेईमानी में फंसा रहता है। ऐसा आदमी प्रार्थना करने योग्य नहीं है। वह प्रभु के आदेश की अवहेलना कर प्रभु मय बनने की योग्यता को खो देता है। ऐसा व्यक्ति यदि प्रार्थना करता है तो वह आत्म प्रवंचना है।

आदमी बड़ा चालाक होता है। वह भाग्य को भी धोखा देने में नहीं हिचकता। एक आदमी ने देवी के समक्ष काम की सफलता होने पर भैंसे की बलि चढ़ाने का संकल्प लिया। उसका काम भी हो गया। अब उसने

(शेष पृष्ठ 33 पर)

गतांक से आगे

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में राजपूतों का योगदान

– संकलन – भंवरसिंह मांडासी

कुछ समय पूर्व जयपहाड़ी (झुन्झुनू) के मेजर यासीन खाँ के संग्रह से ऐसे पत्र प्राप्त हुए हैं जिनसे जाना जाता है कि सितम्बर 1857 में दिल्ली में होने वाले संग्राम में डूण्डलोद ठाकुर जयसिंह के कामदार नागड़ पठान फजल अलीखान भी लड़ रहे थे। इन पत्रों से यह भी मालूम होता है कि स्वतंत्रता संग्राम के नेता बहादुरशाह जफर व उनके शाहजादों से जयसिंह के मधुर सम्बन्ध थे। इस कारण जयसिंह के कामदार दिल्ली के इस युद्ध में भाग लेने पहुँच गये थे। शाहजादा मुहम्मद कैबाश से उनकी अच्छी मित्रता थी। सितम्बर के तीसरे सप्ताह में अंग्रेजों ने दिल्ली को घेर लिया था। इस समय फजल अली खाँ वहीं थे। कश्मीरी दरवाजा व चांदनी चौक में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े गये युद्धों में फजल अली खाँ भी लड़े और उनके भतीजे मौजूदीन खाँ घायल हुए। बादशाह की ओर से रेवेन्यू एकत्रित करने के कार्य भी इन्होंने किये। 18 सितम्बर, 1857 को क्रान्तिकारियों और अंग्रेजी सेना के बीच जमकर लड़ाई हुई। दिल्ली पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया। ऐसे समय में बहादुरशाह को उसका सेनापति बख्तखाँ बाहर ले जाना चाहता था पर इलाईबख्स के धोखे में आकर बादशाह ने हुमायूं के मकबरा में जाने का निर्णय लिया। 20 सितम्बर को बादशाह हुमायूं के मकबरे में गया। इस समय फजल अली खान ने शाहजादा मिर्जा कैबाश को शेखावाटी (राज.) चलने को कहा और यह भी कहा कि अब अंग्रेज आपका बुरा हाल कर देंगे, कुछ सोचने के बाद शाहजादे ने बात मान ली और कहा कि तुम कुतबसाहब के पास चलकर मेरा इन्तजार करो। इसके साथ ही शाहजादे ने फजल अली खाँ को अपना खास घोड़ा, प्रमाण पत्र व ठाकुर जयसिंह डूण्डलोद के नाम पत्र दिया जो इस प्रकार था :-

'मोहर'

''शाहबादशाह गाजी अबूजाफर सिराजूद्दीन मोहम्मद बहादुरशाह मोहर कचहरी मिर्जा मोहम्मद कैबाश इब्ने''

फिदवी खास लायक अलइखतसास ठा. जयसिंह शेखावत ब-आलियत-ब सनद बजबानी मौतमिद अलिखिदमत शुजाउत्त निशान फजम अलियान नागड़ बैगोश बंद जाने आली गुजश्त कि आवअमोदत कशीदर ऊताऊत फरयावरदारी मा बदौलत बहरटंच व अन्वाह मुलाउक व सरगरम व अस्त लिहाजा जेब रकम मीशुद किहम्बर बिनन माकरबंद व रुनददर निमानी मौजिब बहबूदी व अजदबाय मदारिज ईशानवर सलक बंद गान जमाव फलक रकाब-ख्वाहिद शुद ज्यादा तामसीलात फकत। तहरीर नहम मोइर्रम अलहराम सन् 29 मोऊल्ला।

इन कागज पत्रों सहित शाहजादे कैबाश से विदा लेकर कुतुब साहब पहुँचे और सायं तक रुके। उन्हें भागते हुए काफिले से खबर मिली कि शाही परिवार को अंग्रेजों ने गिरफ्तार कर लिया है। (शाही बक्स जो अंग्रेजों से मिला हुआ था, ने बादशाह और उसके परिवार को गिरफ्तार करवा दिया था) यह सुनकर फजल अली खाँ वहाँ से चल पड़े परन्तु थोड़ी देर बाद पता चला कि शाहबजादा कैबाश उनके वहाँ से आने के बाद कुतुब साहब आये थे। यह सुनकर उनको बड़ा पछतावा हुआ पर अब समय निकल चुका था, कुछ नहीं हो सका। इसके बाद शाहजादा कैबाश का क्या हुआ कुछ भी पता नहीं चला। इतिहास ग्रन्थों में बादशाह के अन्य शहजादों के नाम तो आते हैं जिनको अंग्रेजों ने गोली से उड़ा दिया था पर कैबाश के हालात मालूम नहीं होते। इनके भतीजे मौजूद्दीन ने जब अंग्रेजों की सेवा स्वीकार कर लेने की कही तो उन्हें बहुत बुरा लगा। वे वहाँ से शेखावाटी आ गये और कई दिनों तक भूमिगत रहे। उनका इन्तकाल केड में हुआ। जयसिंह के कामदार फजल अली खाँ मुगल बादशाह बहादुरशाह के दरबार में विश्वसनीय व्यक्ति थे। ठा. जयसिंह डूण्डलोद के बादशाह बहादुरशाह

(शेष पृष्ठ 34 पर)

भक्त शिरोमणि मीरा बाई

– आलेख एवं चित्रांकन ब्रजराजसिंह खरेड़ा

दुख: बाह्य प्रतीकों से न घटता है न बढ़ता है शांति व आनन्द अपने भीतर ही है।... इस संसार में रहते हुए मन से संन्यासी बनने का प्रयास करो, ईश्वर की सत्ता व निर्णयों को स्वीकार करो
मेरा मिथ्या भ्रम दूर कर दिया आपने
यदि तुम सक्षम हो तो निर्बल व असहाय लोगों की सेवा करो, इससे बड़ी भक्ति नहीं है... 'पर हित' मार्ग पर बढ़ते चलो तुम्हारे सारे दुख: मिट जाएँगे

मीराजी द्वारा प्रवाहित भक्ति व ज्ञान की गंगा ने असंख्य श्रद्धालुओं के जीवन को आनंदमय कर दिया... उनके भजन जगत के लिए अनुपम उपहार थे।.. उन्हें द्वारका में रहते 7 वर्ष हो गये थे, अब विरह वेदना का अनियंत्रित ज्वार उठने लगा था
भगवन! अब मीरा जी की व्याकुलता देखी नहीं जाती। उन्हें शांति प्रदान करो
हे द्वारकाधीश!... अब अपने धाम बुलालो अपनी माधवी... इस जगत की मीरा को!... विरह की वेदना अब असह्य हो रही है, इस देह से मुक्ति दो प्राणनाथ, मुझे लगता है इस जगत के लिए मेरी भूमिका पूरी हो चुकी है।... मैंने अपनी क्षमतानुसार प्रभु की शक्ति का महत्व जन सामान्य तक पहुंचाने का कर्म किया है

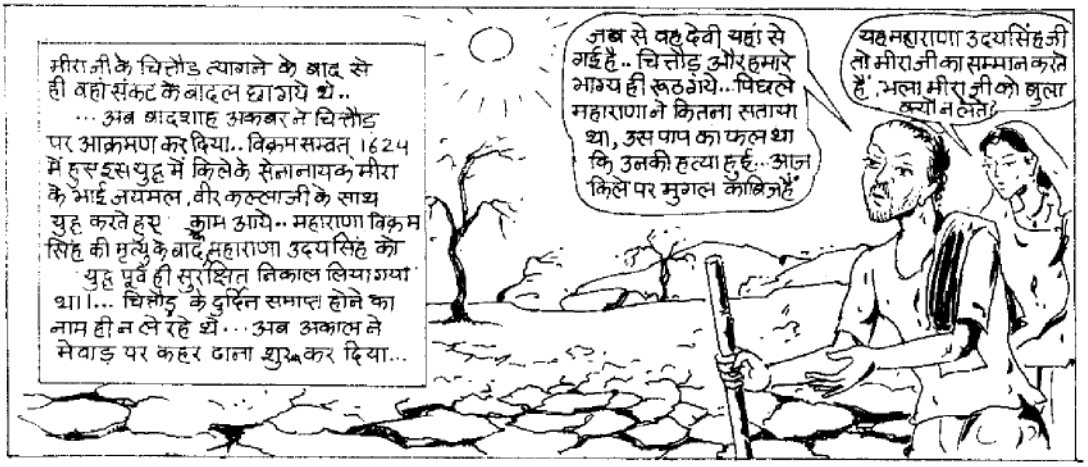
मीरा जी के चित्तौड़ त्यागने के बाद से ही वहां संकट के बादल छा गये थे.. ... अब बादशाह अकबर ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया.. विक्रम संवत् 1624 में हुए इस युद्ध में किले के सेनानायक मीरा के भाई जयमल, वीर कल्लाजी के साथ युद्ध करते हुए काम आये.. महाराणा विक्रम सिंह की मृत्यु के बाद महाराणा उदय सिंह को युद्ध पूर्व ही सुरक्षित निकाल लिया गया था।... चित्तौड़ के दुर्दिन समाप्त होने का नाम ही न ले रहे थे... अब अकाल ने मेवाड़ पर कहर ढाना शुरू कर दिया...
जब से वह देवी यहां से गई है.. चित्तौड़ और हमारे भाग्य ही रूठ गये.. पिछले महाराणा ने कितना सताया था, उस पाप का फल था कि उनकी हत्या हुई... आज किले पर मुगल काबिज हैं
यह महाराणा उदय सिंह जी तो मीरा जी का सम्मान करते हैं, भला मीरा जी को बुला क्यों न लेते?

अपनी बात

जो भी कर्म किया जाए, वह समग्रता से किया जाए, ऐसी सलाह गुरुजन से मिलती है। इसका अर्थ अति करने से नहीं है। संतुलन, समाधि, समन्वय, सम्यकत्व, समता, संबोधि, समवेत, समग्रता-इन सब का जन्म हुआ है एक छोटी-सी धातु-'सम' से। सम का अर्थ होता है शान्त। उसी से समता बनता है, उसी से समन्वय बनता है, उसी से संबोधि, उसी से समाधि। वही सम समग्रता में मौजूद है।

समग्रता कभी अति नहीं होती, क्योंकि सम अवस्था तो मध्य में ही होती है। अत: समग्रता से करने का अर्थ अति पूर्वक करना नहीं है। यदि अति हो गई तो समग्रता से चूक गये। मान लें भोजन करने की बात है। जो समग्रता से भोजन करेगा वह उस वक्त रुक जाएगा, जब शरीर कहेगा-अब बस। शरीर हमेशा मध्य में बस कहेगा। अगर भूखे हैं तो शरीर कहेगा-थोड़ा और। अगर ज्यादा खाना शुरू कर दिया तो शरीर कहेगा-बस अब नहीं।

शरीर कभी अति नहीं करता, अति करता है मन। इस बात को ठीक से समझने की आवश्यकता है। कोई पशु अति नहीं करता, वह ठीक समय पर रुक जाता है। उनको कोई उपदेश देने वाला नहीं है कि ज्यादा घास मत खा लेना या कि आज उपवास करना है। लेकिन कोई पशु ज्यादा नहीं खाता। पेट भरने के बाद चाहे कैसा ही चारा पड़ा हो, वह नहीं खाता। जो और जितना उसके शरीर को रास पड़ता है, जो उसकी प्रकृति के अनुकूल है, जो उसकी प्रकृति को सम अवस्था में रखता है, वही खाता है। यह सहज हो रहा है, मन नहीं है वहाँ।

मन उपद्रव करता है। मन ही कहता है कि सामग्री स्वादिष्ट है, थोड़ी और हो जाए। पेट कहता है बस करो अब ज्यादा हो जाएगा। मगर शरीर की मन सुनने नहीं देता। यहाँ मन हमारा शत्रु बन गया है। शरीर तो सहज प्राकृतिक है, मन में हैं सारे विकार, सारे उपद्रव। मन सुनता नहीं है।

मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग किए हैं। छोटे बच्चों को यदि भोजन के पास बिठा दिया जावे तो हम सोचते हैं कि वे ज्यादा खा लेंगे। लेकिन यह ख्याल गलत है, प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि वे ज्यादा नहीं खाते। ज्यादा उनके माता-पिता खिला देते हैं कि थोड़ा और खाओ, ताकतवर बनोगे, हृष्ट-पुष्ट बन जाओगे, मस्त हो जाओगे-थोड़ा और लो। बच्चा रो रहा है, वह नहीं खाना चाहता, मुँह फेर लेता है, फिर भी ठूंसना चाहते हैं। यह अति है और अति ही विकार पैदा करेगी।

साधना के क्षेत्र में भी जो अति करता है, मध्य में स्थित नहीं है, वह समग्रता पर नहीं है। कोई कहे मैं मात्र हवा से ही जीना चाहता हूँ या कोई कहे मैं सिर्फ पानी पर जीवित रहने की साधना करूंगा। ऐसी मन की आकांक्षा है-ऐसी अहंकार की दौड़ है। दौड़ किस दिशा में दौड़ी जा रही है, इससे भेद नहीं पड़ता। अहंकार अति में जीता है। धन हो तो अति हो, त्याग हो तो अति हो, भोग हो तो अति हो, योग हो तो अति हो। यदि मध्य में खड़े हो जाएँ तो, स्वाभाविक-प्राकृतिक हो जाता है और अहंकार मर जाता है।

श्रोण एक ख्यातिनामा सम्राट था। उसकी ख्याति भोगी की तरह थी। उसके महल में भोग की हर वस्तु थी। रात-भर राग-रंग चलता था। दिन भर सोता था। ऐसे भोग में डूबा था कि उसे कभी संन्यास की भी कल्पना उठेगी, यह किसी ने सोचा तक नहीं था। श्रोण महात्मा बुद्ध के पास आया और उनके चरणों में गिरकर दीक्षा की भीख माँगी। किसी को विश्वास नहीं हो रहा था कि वह ऐसा भी कर सकता है।

बुद्ध के भिक्षुओं ने पूछा-हमें भरोसा नहीं आता कि श्रोण संन्यस्त हो रहा है। बुद्ध ने कहा कि मैं जानता था कि एक दिन यह संन्यस्त होगा। क्योंकि इसने भोग की अति कर ली पर उसके अहंकार की तृप्ति नहीं हुई। भोग के लिये जो हो सकता है जगत में, वह सब कुछ

इसके पास है। अब अहंकार के आगे दीवार आ गई। घड़ी का पेंडुलम दायें आखिरी छोर तक चला जाता है तो फिर लौट पड़ता है बांयें छोर के लिये। जो अति भोग में जाएगा, वह एक न एक दिन अति योग में चला जाएगा। बुद्ध ने कहा थोड़े दिन प्रतीक्षा करो तुम देखोगे वह योग की अति पर जाएगा।

भिक्षु लोग पटे हुए रास्ते पर चलते, वह कांटों व झाड़ियों में चलता। पैर लहू-लुहान हो गए। धूप में खड़ा रहता, मात्र लंगोटी पहनने को रखी, दो दिन में एक बार भोजन करता वह भी खड़े-खड़े, करपात्री बनकर। सूख गया, हड्डी-हड्डी हो गया, शरीर काला पड़ गया, पैरों में छाले हो गए लेकिन वह और कसे जाता था। फिर तो उसने भोजन भी बन्द कर दिया। फिर पानी लेना बंद कर दिया। एक-दो दिन का मेहमान लग रहा था। बुद्ध ने भिक्षुओं को बताया कि देख लो दूसरी अति पर आ गया है।

बुद्ध उसके झोंपड़े में गये जहाँ पर मरणासन्न अवस्था में पड़ा था। उससे कहा कि मैंने सुना है कि तू सम्राट था तो तुझे वीणा बजाने की बड़ी आतुरता थी। वीणा बजाने में कुशल भी था। मैं तुझसे पूछने आया हूँ कि वीणा के तार ढीले हों तो संगीत पैदा होता है या नहीं। उसने उत्तर दिया आप भी क्या पूछ रहे हैं, तार ढीले होंगे तो टंकार ही पैदा नहीं हो सकती। बुद्ध ने फिर पूछा कि वीणा के तार बहुत कसे हों तो संगीत पैदा होता है या नहीं? श्रोण ने कहा-तार बहुत कसे हों तो छूते ही तार टूट जाएंगे, संगीत पैदा नहीं होगा, सिर्फ तार टूटने की, साज टूटने की आवाज आएगी।

बुद्ध ने कहा-मैं तुम्हें याद दिलाने आया हूँ। जैसे तुझे वीणा का अनुभव है, वैसे ही मुझे जीवन-वीणा का अनुभव है। जीवन के तार भी बहुत कसे हों तो संगीत पैदा नहीं होता और जीवन के तार ढीले हों तो भी संगीत पैदा नहीं होता। तार मध्य में होने चाहिए। अब तू जाग, बहुत हो गया। पहले तेरे तार बहुत ढीले थे, अब तूने बहुत कस लिए हैं। न तब संगीत पैदा हुआ, न अब। कहाँ है तेरे पास समाधि? पहले ठूंस-ठूंस खाता था, अब उपवासा मर रहा है। पहले कभी नंगे पैर नहीं चला, मखमल पर चलता था, अब राह छोड़ कांटों पर चलता है। पहले शराब के अतिरिक्त पानी शायद कभी पीया ही नहीं, अब पानी से भी डरता है। तू एक अति से दूसरी अति तक आ गया। अब समय आ गया है कि तू मध्य में आ जा। श्रोण को बोध हो गया, मध्य मार्ग मिल गया। समग्रता को उपलब्ध हुआ।

यही संघ में हमें सिखाया जाता है कि संसार छोड़ना नहीं है, संसार में ऐसे रहो कि रहते हुए भी जैसे संसार में नहीं हैं। न तो संसार हम पर हावी हो जाए और न जरूरत है संसार छोड़कर भाग जाने की। समग्रता में जीवन ढालो। न भोगी बनो, न योगी, मध्य में ठहर जाओ। न तो धन के पीछे दौड़ो न धन छोड़कर भागो। आसक्ति से ऊपर उठो। तभी संघ कार्य समग्रता से हो सकेगा।

पृष्ठ 28 का शेष

उद्देश्य के अनुकूल प्रार्थना सफल हो जाती है

भैंसे को रस्सी सहित देव की मूर्ति से बांध दिया। भैंसा उसी देवी को रस्सी से घसीटते हुये ले भागा। यह धोखा है। प्रार्थना में धोखा नहीं होता।

प्रभु में अनन्त ज्ञान है, अनन्त दर्शन और अनन्त आनंद के साथ-साथ अनन्त शक्ति भी होती है। जिसे भगवान की प्रार्थना करनी हो उसे अपने भीतर ज्ञान, दर्शन, आनन्द और शक्ति को जगाना होगा। इन चारों के होते हुये प्रार्थना की जाती है वह सफल हो जाती है। दुनियाँ में सबसे बड़ी है शक्ति। जिसमें शक्ति नहीं जागती उसे कभी न्याय नहीं मिलता। हमारे घरों में प्राय: भगवान से दया स्वरूप मांगते हुए देखा जाता है भगवान मेरा यह कर दो, वह कर दो लेकिन उक्त चारों बातों का समावेश उसमें नहीं होता, इसलिये सफलता भी मिलना कठिन हो जाता है।

गत वर्ष पुष्कर में क्षत्रिय युवक संघ के शिविर में एक प्रार्थना के साथ सहगायन के बोल 'झुकवा दो आसमान' का उच्चारण हुआ, कुछ घण्टों बाद ही तपिश के हालात ठंडक में बदल गये। उद्देश्य के अनुकूल की गई प्रार्थना सफल होती है।

- : शिविर सूचना :-

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं-

क्र.सं.	शिविर	समय	मार्ग आदि
1.	उ.प्र.शि.	11.05.2018 से 21.05.2018	भारतीय ग्राम्य आलोकायन आश्रम, गेहूं रोड़, बाड़मेर।
2.	विशेष शिविर	22.05.2018 से 25.05.2018	भारतीय ग्राम्य आलोकायन आश्रम, गेहूं रोड़, बाड़मेर। (केवल आमंत्रित स्वयंसेवकों हेतु)
3.	मा.प्र.शि. (बालिका)	28.05.2018 से 03.06.2018	देवीकोट, जिला-जैसलमेर। इस शिविर में 8वीं कक्षा उत्तीर्ण तथा पूर्व में कम से कम दो शिविर की हुई बालिकाएँ ही आ सकेंगी।

* गणवेश व आवश्यक साहित्य लेकर आवें

राजेन्द्रसिंह बोबासर

शिविर कार्यालय प्रमुख (श्री क्षत्रिय युवक संघ)

पृष्ठ 28 का शेष

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में राजपूतों का योगदान

जफर से बड़े प्रगाढ़ व मधुर सम्बन्ध थे। देश के अन्य भागों में हम अंग्रेजों की शक्ति के सामने टिक नहीं सके अत: अंग्रेजों की जीत हुई। अंग्रेज राज्य और अधिक सुदृढ़ हो गया। इसके साथ ही राजस्थान में स्वतंत्रता की लौ मंद पड़ गई। परन्तु फिर बाद में स्वतंत्रता रूपी इस लौ को पुन: प्रज्वलित किया केशरीसिंह बारहठ, उनके पुत्र प्रतापसिंह, राव गोपालसिंह खरवा आदि क्रान्तिकारियों ने। केशरीसिंह बारहठ का चरित्र देश भक्ति की भावना से ओतप्रोत था। उन्होंने अपने मर्मस्पर्शी काव्य से राजस्थान के राजपूतों को जगाने का बीड़ा उठाया। अत: अंग्रेजों का उनसे नाराज होना स्वाभाविक था। उनके देश प्रेम के कारण उनके भाई जोरावरसिंह, पत्नी माणक कंवर और जंवाई ईश्वरदान को भी यातनाएँ सहनी पड़ी थी। इनके पुत्र प्रतापसिंह तो सदैव आजादी के गीत गाते ही रहते थे। केशरीसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया और पांच साल की कैद की सजा दी। प्रतापसिंह को भी अंग्रेज विरोधी षड़यंत्र में शामिल होने के अपराध में बरेली जेल में कैद कर लिया गया व वहीं उस वीर की मृत्यु हुई। अब तो वीर केशरीसिंह प्राण-पण से अंग्रेजों के विरुद्ध रणक्षेत्र में डट गये।

इसी समय तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन ने फरवरी 1903 में दिल्ली दरबार का आयोजन किया। भारत के सभी राजाओं को इसमें सम्मिलित होने के लिये फरमान भेजा। महाराणा फतहसिंह उदयपुर भी इस दरबार में शामिल हो रहे थे। यह बात उस समय के कुछ देशप्रेमी व स्वाभिमानी राजपूतों को अच्छी नहीं लगी। इस कारण मलसीसर हाऊस जयपुर में ठा. केशरीसिंह बारहठ, ठा. भूरसिंह मलसीसर और ठा. करणीसिंह जोबनेर ने विचार-विमर्श किया कि कुछ ऐसा कार्य किया जावे कि महाराणा उदयपुर किसी भी भांति इस दरबार में शामिल न हों।

इस कार्य को करने का उत्तरदायित्व ठा. केशरीसिंह बारहठ को सौंपा गया। बारहठ केशरीसिंह ने ''चेतावणी रा चूंगट्या'' नाम से सोरठे लिखे और फतहसिंह इतने प्रभावित हुए कि वे दिल्ली तो जरूर पहुँचे पर वायसराय के दरबार में उपस्थित नहीं हुए। अंग्रेज सरकार भी यह समझकर कि कहीं अंग्रेज विरोधी अग्नि और अधिक तेज न हो जाये, चुप ही रही। इन घटनाओं से यह जाना जा सकता है कि 1857 ई. के बाद भी कई राजपूतों ने अंग्रेज-विरोधी अभियानों में खुलकर भाग लिया था।

(क्रमश:)

हुकुम सिंह कुम्पावत (आकडावास, पाली)

शिव ज्वैलर्स

विश्वसनीयता में एक मात्र नाम

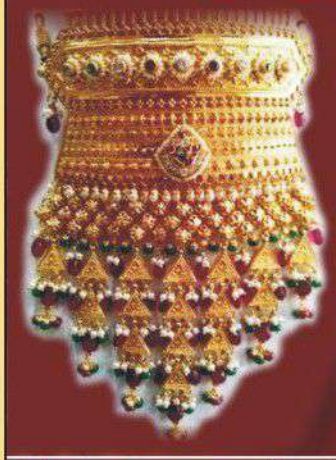

22/22 कैरेट हॉलमार्क आभूषण,
न्यूनतम बनवाई दर पर

शुद्ध राजपूती आभूषण (बाजूबन्द, पूछी, बंगडी, नथ आदि)
तैयार उपलब्ध एवं ऑर्डर से भी तैयार किये जाते है।

विशेषज्ञ :- सोने व चाँदी की पायजेब, अंगूठी, डायमण्ड, कुन्दन के आभूषण, बैंकॉक आईटम्स आदि

जी-1, सफायर कॉम्पलेक्स, जैन मेडिकल के सामने, खातीपुरा रोड़, झोटवाड़ा, जयपुर
मो. 7073186603, 8890942548 ब्रांच :- बैंगलोर व मुम्बई

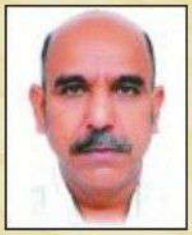

Sharwansingh Jaitawat
9326805192
020-65107720
65107740
27660466

Shree Mahavir Plywood & Hardware

Plywood
Frame
Flush Door

Moulding
Lipping
All Types of woods

Carving
Laminate
All Brass Fitting

Sharwansingh S/o. Dungarsingh Jaitawat
V.P.O. Dhunda Lambodi, Tal.-Sojat, Distt.-Pali

Shop Add. :- Chikhali Road, M.I.D.C., 'G' Block, PL. No. PAP-24
Kasturi Market, Sambhaji Nagar, Chinchwad, Pune-19

प्रेम पौशाक

समस्त राजपूती पौशाकों के होलसेल विक्रेता

भँवर सिंह पीपासर
9828130003

रिडमल सिंह महणसर
9829027627

शॉप नं. 93, जोधपुर स्वीट्स
के सामने, खातीपुरा रोड़,
झोटवाड़ा, जयपुर

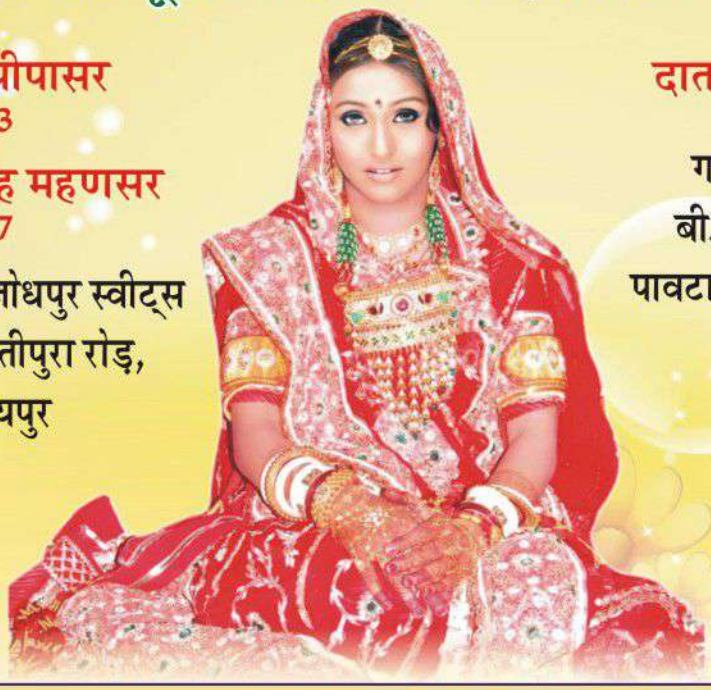

दातारसिंह दुगोली
7339926252

गली नं. 16 कॉर्नर,
बी.जे.एस. कॉलोनी,
पावटा बी रोड़, जोधपुर

अप्रेल, सन् 2018
वर्ष : 55, अंक : 04

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2017-19

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्.....

.....

.....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह